प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर 2018

भाकृअनुप
ICAR

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
IARI 1905
जीव – जीवन कृषि

संपादकीय

वर्तमान में किसानों के लिए खेती के वैकल्पिक और लाभकारी तरीकों का अभाव नहीं है। जोखिम कम करने के लिए जहाँ एक ओर मिश्रित खेती का विकल्प मौजूद है, जिसमें एक फसल के बजाए अनेक फसलों, सब्जियों एवं साथ ही पशुपालन, मुर्गी पालन को भी अपनाया जाता है, वहीं दूसरी ओर इससे संबंधित उद्योग–धन्धों, प्रसंस्करण, परिरक्षण, मशीनरी – मरम्मत सेवा और आपूर्ति जैसे क्षेत्र भी उभर रहें हैं। देशभर में हजारों संस्थाएं निरंतर शोध में लगी हैं। खेती और सेवा क्षेत्र के नए–नए स्वरूप आकार ले रहे हैं। आज समय की मांग है कि किसान भाई अधिकाधिक तरीकों को इस तरह मिलाकर अपनाएं, कि संसाधनों का दक्षतापूर्वक इस्तेमाल हो और उन्हें नियमित रूप से आमदनी मिलती रहे।

लघु एवं सीमान्त कृषकों की सुरक्षित आजीविका एवं परिर्वतनशील जलवायु के समुत्थान हेतु समन्वित कृषि प्रणाली कारगर सिद्ध हुई है। समन्वित कृषि प्रणाली विभिन्न उद्यमों का विवेकपूर्ण संयोजन है जिसमे एक उद्यम का उप–उत्पाद दूसरे उद्यम के लिए संसाधन बन जाता है। एक कृषक परिवार समन्वित कृषि प्रणाली (आई.एफ.एस.) मॉडल अपनाकर वर्ष–भर संतुलित आहार के साथ नियमित रोजगार (675 श्रम–दिन) (₹ 3.5–3.8 लाख/हे.) सुनिश्चित कर सकता है।

आज निश्चित रूप से पारंपरिक खेती पद्धति बदलनी होगी, रोजाना खर्च के लिए नियमित आमदनी के जरिए तलाशने होंगे। वर्तमान समय में केवल ज्ञान एवं तकनीकी ऐसे जरिए हैं, जो किसानों को इस संकट से उबारने में मदद कर सकते हैं। अतः जितना संभव हो, नई तकनीकी अपनाऐं, नई जानकारी को इकट्ठा करने में लग जाएं, ज्ञान प्राप्ति के लिए सजग और तत्पर रहें, तभी इस सूचना क्रांति का लाभ ले सकते हैं।

इस संस्थान ने देश के सभी भागों और अवधियों (अगेती या पछेती) में बोई जा सकने वाली प्रजातियां विकसित की हैं। देश के सभी किसानों के लिए अपने क्षेत्रों के अनुकूल अनेक विकल्प मौजूद हैं। सावधानी केवल इतनी बरतनी है कि यदि अगेती बुआई करनी हो, तो अगेती किस्मों और पछेती बुआई हो, तो केवल पछेती किस्मों का ही चुनाव करें।

किसानों से निवेदन है कि बीज खरीदते समय उस प्रजाति की खेती के अनुशंसित तरीके से संबंधित लघु पुस्तिका भी खरीदें। विशेषज्ञों से प्रजातियों के नाम के साथ कुछ अतिरिक्त जानकारी भी प्राप्त करें, जैसे कि बुआई का उचित समय क्या है। इसकी किस–किस रोगों या कीटों के प्रति प्रतिरोधकता या सहनशीलता है, प्रजाति बारानी परिस्थितियों के अनुकूल है या केवल सिंचित के लिए? किसान भाइयों को सलाह दी जाती है कि वह जिस प्रजाति का बीज खरीदते हैं उनकी वैज्ञानिक जानकारी भी अवश्य प्राप्त करें। किसान भाइयों को यह भी सलाह दी जाती है कि वह अपने खेत में फसल विविधीकरण अपनाएं जिससे बाजार का जोखिम कम से कम किया जा सके। फसल विविधीकरण की अवधारणा नई नहीं है, सदियों से हमारे पूर्वज एक फसल पर निर्भर न रहकर कई प्रकार की फसल लेते रहे हैं। खेत में लगने वाली फसलों की योजना इस प्रकार बनाएं कि इसमें अनेक प्रकार की फसलों, सब्जियों और पशु चारे का समावेश हो, ताकि कम क्षेत्र में अधिक लाभ हो।

प्रसार दूत के इस अंक में खरीफ एवं रबी मौसम को ध्यान में रखते हुए समसामयिक फसलों से संबन्धित आलेखों को शामिल किया गया है। इसमें धान उत्पादन तकनीकों के आधुनिक आयाम, विभिन्न क्षेत्रों के लिए बाजरे की नवीनतम किस्में, खरीफ मक्का की उत्पादन तकनीकियाँ, सरसों की उन्नत प्रजातियाँ एवं वैज्ञानिक खेती, खरीफ की सब्जियों में कीटों का प्रबंधन, धान में प्रमुख नाशीजीव का प्रबंधन, किन्नो के बागों की समस्याएं व समाधान तथा वर्षा ऋतु में पशु प्रबंधान से संबंधित आलेख शामिल किए गए हैं। आशा है प्रसार दूत का यह अंक किसान भाइयों के लिए लाभप्रद होगा।

संपादक

सितम्बर 2018
प्रसार दूत

वर्ष 23 | 2018 | अंक-3

संरक्षक
डॉ. ए.के. सिंह
कार्यवाहक निदेशक
डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)
प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास
सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे
सम्पादक मंडल
डॉ. वाई. वी. सिंह
डॉ. एम. के वर्मा
डॉ. रेणु सिंह
श्री के. एस. यादव
डॉ. हरीश कुमार
श्री आनन्द विजय दुबे
तकनीकी सहयोग
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. धान उत्पादन तकनीकी के आधुनिक आयाम 1
2. विभिन्न क्षेत्रों के लिए बाजरे की नविनतम किस्में 11
3. खरीफ मक्का की उन्नत उत्पादन तकनीकियाँ 15
4. कम अवधि में परिपक्व होने वाली सरसों की प्रजातियां एवं उनकी वैज्ञानिक खेती 24
5. खरीफ की सब्जियों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का प्रबंधन 28
6. धान की फसल के प्रमुख नाशीजीव व उनका समेंकित प्रबंधन 33
7. किन्नो के बागों की प्रमुख समस्याएं एवं समाधान 39
8. वर्षा ऋतु में पशु प्रबंधन 42
9. मृदा क्षरण के कारण एवं रोकथाम के उपाय 50

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 20/–**

धान उत्पादन तकनीकी के आधुनिक आयाम

दिनेश कुमार एवं यशबीर सिंह शिवे
सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

धान भारत की सबसे महत्वपूर्ण व विश्व की दूसरी महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। दुनिया का 90 प्रतिशत धान एशिया महाद्वीप में उगाया और उपयोग में लाया जाता है। एशिया के प्रमुख धान उत्पादक देशों में भारत, चीन, इंडोनेशिया, वियतनाम, थाईलैंड, बंग्लादेश, फिलिपींस और म्यांमार आदि हैं। भारत देश में लगभग 44 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है जबकि चीन देश में लगभग 30 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है। हालांकि भारत में चीन देश की तुलना में काफी अधिक क्षेत्रफल है परंतु चीन देश धान के उत्पादन में अग्रणी है। इसका कारण है चीन देश में धान की प्रति इकाई क्षेत्र भारत की तुलना में कहीं अधिक उत्पादकता। विडंबना यह भी है की भारत देश में धान की उत्पादकता विश्व की औसत वार्षिक उत्पादकता से काफी कम है।

आधुनिक उत्पादन तकनीकी की आवश्यकता

भारतवर्ष में धान की कम उत्पादकता के अनेक कारण हैं। धान की खेती का एक बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी वर्षा पर आधारित है जहां पर पानी की कमी के कारण धान की कम पैदावार प्राप्त होती है। केवल 58 प्रतिशत धान–क्षेत्र सिंचित है। इसके अलावा सूखा, पुष्पावस्था पर अधिक तापक्रम, फसल का गिरना, मृदा क्षारीयता, लवणता अथवा अम्लता, घटती मृदा उर्वरता, जस्ते की कमी, लौह तत्व की विषाक्तता, खरपतवार, असंतुलित उर्वरक प्रयोग तथा कीट एवं रोग द्वारा क्षति, आदि अनेक कारण हैं जो धान–उत्पादन एवं उत्पादकता पर कुप्रभाव डालते हैं। साथ ही धान की उत्पादकता बहुत बड़े सिंचित क्षेत्रों जैसे पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु एवं आन्ध्र प्रदेश के तटीय जिलों में स्थिर हो चुकी है और हमें इस स्थिरता को तोड़ना होगा। धान उत्पादन को लाभकारी बनाने के लिए नई–नई तकनीकियों को अपनाने की आवश्यकता है जिससे कि फसलोत्पादन लागत में कमी लाई जा सके और उत्पादकता बढ़ाई जा सके। इस दिशा में अधिक से अधिक किसानों तक नवीनतम धान उत्पादन तकनीक को पहुँचाना आवश्यक होगा। मुख्य तौर पर धान उत्पादन में जल की बचत और मशीनों के प्रयोग से संबंधित तकनीकियों पर विशेष बल देने की आवश्यकता है।

धान उत्पादन में जल की बचत

अन्य फसलों की तुलना में धान को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। परंपरागत विधि से धान उत्पादन में 1 कि.ग्रा. धान पैदा करने हेतु लगभग 3000/5000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। धान उत्पादन में जल की यह आवश्यकता मुख्यतः खेत की तैयारी एवं पौध लगाना, वाष्पोत्सर्जन एवं भूमिगत रिसाव और इसके गहराई में चले जाने में होती है। प्रायः यह देखा गया है कि किसान धान की खेती में कहीं अधिक जल का प्रयोग करते हैं क्योंकि परंपरागत सिंचाई विधियों की जल दक्षता मात्र 30–40 प्रतिशत ही होती है। पानी की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए विश्व भर में खेत स्तर पर धान उगाने हेतु नवीनतम तकनीकियों को अपनाया जा रहा है। और इन अधिकांश तकनीकियों से परंपरागत विधियों की तुलना में पानी की काफी बचत होती है क्योंकि ये विधियां पानी की लगातार हो रही कमी से प्रेरित होती हैं। अभी तक किसानों की यह धारणा है कि धान से अधिक उत्पादन लेने के लिए खेतों में जलमग्नता रहनी चाहिए, परंतु अनुसंधान से यह साबित हो गया है कि धान को इतने अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। हां यह जरूर है कि धान में लगातार पानी भरे रहने से खरपतवारों से होने वाले नुकसान में कमी आ जाती है। यदि खरपतवारों को उपयुक्त विधियों से खत्म कर दिया जाए तो लगातार जलमग्न अवस्था धान के लिए कोई जरूरी नहीं होती। आज जल की मांग एवं उपलब्धता

को देखते हुए ऐसी कई नई तकनीकियों से जैसेः लेजर लेवलिंग, धान की ऐरोबिक (वायवी) विधि, खेत में पानी सोखने के 2–3 दिन बाद सिंचाई एवं एस.आर.आई. (धान सघनता विधि), आदि को अपनाकर जल की आवश्यकता में कमी के साथ–साथ फसल उत्पादकता को भी बढ़ाया जा सकता है।

खेत को समतल एवं उपयुक्त ढाल पर रखकर पानी को समान रूप से पूरे खेत में दिया जा सकता है। इससे पानी की खपत में कमी आती है। आजकल खेत समतलीकरण आधुनिकतम तकनीक लेजर लेवलिंग से किया जाए तो खेत को न सिर्फ भलीभांति समतल किया जा सकता है बल्कि एक मनचाहा ढाल भी प्रदान किया जा सकता है। लेजर विधि द्वारा समतल किए गए खेत में अन्य विधियों द्वारा किए गए खेतों की तुलना में पैदावार अधिक होती है तथा जल उत्पादकता में भी वृद्धि पाई होती है। प्रायः किसान धान की रोपाई से लेकर इसकी कटाई तक खेत में लगातार जल भरकर रखते हैं। परंतु इससे जल की मांग भी बढ़ जाती है और दूसरे हानिकारक प्रभाव भी आते हैं। अनुसंधान के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि एक सिंचाई से दूसरी सिंचाई में यदि अंतराल यानि खेत का पानी सूखने के 2–3 दिन बाद दूसरी सिंचाई करें। इस पद्धति से न सिर्फ पानी की आवश्यकता में कमी आती है बल्कि उपज में बढ़ोत्तरी होती है। धान उगाने की नई तकनीकियों में आजकल कुछ जगहों पर टपकदार सिंचाई के उपयोग पर अनुसंधान किए जा रहे हैं। यह सर्वमान्य है कि टपकदार सिंचाई से जल की बचत, जल उपयोग क्षमता एवं पोषक तत्वों का प्रयोग भलीभाँति किया जा सकता है। कुछ अनुसंधानों के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि धान में जल एवं पोषक तत्वों की मांग में कमी आ जाती है परंतु परंपरागत धान उगाने की विधि से तुलना करें तो निश्चित तौर पर टपकदार सिंचाई पद्धति से पानी की मांग में काफी कमी आती है एवं पोषक तत्वों का समुचित उपयोग होता है।

जिन क्षेत्रों में पानी की कमी है और धान की फसल लेना आवश्यक है वहाँ पर खेत को बिना पडल किए (बिना गारा/लेव बनाए) धान को सीधे बो दिया जाता है और खेत में पानी कभी भी भरा नही रहता, उस ऐरोबिक धान कहा जाता है। इस तरह जो पानी तकरीबन 20–30 सें.मी. पडलिंग करने के लिए आवश्यक होता है उसकी सीधे–सीधे बचत हो जाती है। इसके साथ ही पौध तैयार करने में जो पानी खर्च होता है उसकी भी बचत होती है। सीधे बुवाई करने से समय की बचत होती है और खेत समय पर अगली फसल के लिए खाली हो जाता है। परंतु इस विधि से धान उगाने पर खेतों में खरपतवार एवं सूत्रक्रमियों की समस्याएं आती हैं। अतः खरपतवारों को नष्ट करने के लिए शाकनाशी दवाइयों का उपयोग एवं अन्य विधि जैसे यांत्रिक वीडर द्वारा खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए अन्यथा धान की उपज पर विपरीत असर पड़ता है। इसी प्रकार सूत्रक्रमियों का प्रबंधन भी आवश्यक होता है। धान की एस.आर.आई. (धान सघनता) पद्धति को अपनाने से न सिर्फ पानी की बचत होती है बल्कि उपज भी अधिक मिलती है। परंपरागत धान की खेती की तुलना में धान उगाने की इस विकसित तकनीक के पाँच प्रमुख अवयव हैंः (1) धान के 10–12 दिन के नवजात पौधों का रोपण जिसमें एक स्थान पर मात्र एक ही पौधा रोपित किया जाता है (2) अधिक दूरी पर पौधों का वर्गाकार ज्यामिती में रोपण (3) सीमित सिंचाई कर पानी की बचत (4) बार–बार खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु कृषि क्रियाओं द्वारा वायु के आवागमन को बरकरार रखना एवं खरपतवारों को खेत में गाड़ना, एवं (5) अधिक से अधिक जैविक खादों का उपयोग करना। इस पद्धति में रोपाई की दूरी 25 सें.मी.x25 सें.मी. अच्छी रहती है। सिंचाई हमेंशा अत्यंत हल्की करते हैं जिससे खेत लगभग नम बनी रहे। यह हमेंशा ध्यान रखना चाहिए कि इस विधि में खेत के ऊपर पानी किसी भी समय खड़ा न रहे।

धान उत्पादन में मानवीय श्रम की बचत

जब धान की खेती परंपरागत विधि से मशीनों के न्यूनतम प्रयोग से की जाती है तो उसमें मानवीय श्रम की काफी आवश्यकता होती है। एक अनुमान के अनुसार इसमें प्रति हेक्टेयर 229 मानव–दिवसों की आवश्यकता होती है जोकि बहुत अधिक श्रम है। अतः धान उत्पादन का मशीनीकरण करके धन, श्रम एवं समय की बचत की जा सकती है। अतः खेत तैयार करने, खरपतवार नियंत्रण, उर्वरक प्रयोग, कटाई एवं मड़ाई आदि में उपलब्ध मशीनों का प्रयोग किया जाता है तो इससे विभिन्न क्रिया–कलापों

को शीघ्रता से कम समय एवं लागत में पूर्ण किया जा सकता है। उदाहारण के लिए हाथ द्वारा फसल की रोपाई की जाती है तो उसमें काफी समय लगता जबकि रोपाई–मशीन का प्रयोग करके इस कार्य को बहुत कम समय में पूरा किया जा सकता है। ड्रम–बिजाई तकनीक से धान की सीधी बिजाई कम समय एवं लागत में संपन्न की जा सकती है। इसी प्रकार धान की कटाई एवं मड़ाई भी मशीनों की मदद से की जा सकती है।

धान की कटाई का उचित समय, प्रजाति, वातावरण, सस्य प्रक्रिया एवं बढवार पर निर्भर करता है। समय का आकलन नमी के आधार पर किया जा सकता है। धान की कटाई के लिए 20 से 22 प्रतिशत नमी उपयुक्त मानी गई है। जल्दी कटाई कर लेने से भी उत्पादन, लाभ एवं गुणवत्ता में भारी कमी आती है। इस तरह के उत्पाद के भंडारण में भी काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दूसरी तरफ देर से कटाई करने पर चावल निकालने के समय दानों का टूटना अवश्यंभावी है। कटाई करते समय भी दानों का झड़ना देखा जाता है। साथ ही साथ चिड़ियों और चूहों द्वारा भी फसल का नुकसान होता है।

यदि धान की कटाई हसियां द्वारा की जाती है तो इसमें लगभग 25 मानव–दिवस प्रति हेक्टेयर श्रम की आवश्यकता होती है। जबकि रिपर यंत्र से 2–4 हेक्टेयर/दिन धान की कटाई की जा सकती है। हालांकि रिपर से कटाई करने के लिए जमीन का एकसार (लेवल) होना आवश्यक है। साथ ही साथ यह खड़ी फसल को दक्षता से काट पाता है पर गिरी हुई फसल की कटाई इससे प्रायः संभव नही होती है। इसी प्रकार कम्बाईन यंत्र 0.5 हेक्टेयर/घंटा तक धान की कटाई एवं गहाई करने की क्षमता रखता है। लेकिन इसके लिए एकसार एवं बड़े खेत होने का होना लाभकारी होता हैं। फसल काटने के उपरांत खेत में बचे हुए अवर्षेष को खेत में ही मिला दें। इससे जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। इसे किसी भी हालात में न जलाएं क्योंकि खेत में आग लगाने से सर्वप्रथम तो नमी कम होती हैं और साथ–साथ खेत में उपस्थित मित्र जीवों का नाश हो जाता है। इतना ही नहीं खेत की उर्वरा शक्ति पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है।

धान की गहाई में साधारण तौर पर मानव श्रम का उपयोग किया जाता है। गहाई का काम मानव द्वारा, पशु द्वारा एवं शक्ति चालित यंत्रों द्वारा किया जाता है। गहाई करने के लिए कटे हुए धान के पौधों को दृढ संरचना (लकडी या लोहे के बड़े सामान) पर पटका जाता है। इस प्रक्रिया से धान के दाने पौधों से अलग हो जाते हैं। इस क्रम में काफी पौधों के अंग भी टूट कर धान में मिश्रित हो जाते हैं जिनको हवा के झोंके द्वारा अलग किया जाता है। इस प्रक्रिया में समय एवं मानव श्रम प्रचुर मात्रा में लगता है जिससे उत्पादन लागत काफी बढ़ जाती है। इस परिस्थिति में गहाई यन्त्रो का उपयोग करना लाभकारी रहता है। शक्ति–चालित थ्रेसरों (गहाई यंत्र) का प्रयोग करके मड़ाई (गहाई) कार्य को शीघ्र समाप्त किया जा सकता है। कुल मिलाकर धान के विभिन्न क्रिया–कलापों में मशीनों का प्रयोग करके धान का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और उत्पादन लागत में कमी लाई जा सकती है जिससे लाभ में वृद्धि होती है।

फसल चक्र का बढ़ता महत्त्व

लगातार एक प्रकार की फसलों को उगाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति में गिरावट आ जाती है। साथ ही कीडे–मकोडे, बीमारियों और खरपतवारों का नियंत्रण भी एक गंभीर समस्या बन जाती है। उदाहरण के लिए लगातार धान–गेहूँ फसल–चक्र अपनाने से गेहुँसा (गुल्ली डंडा) खरपतवार की बढ़वार अधिक होती है जो गेहूँ की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। धान के कुछ कीट गेहूँ की फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में इस फसल चक्र धान–गेहूँ का विविधीकरण करके उपरोक्त समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। धान–गेहूँ फसलचक्र के स्थान पर धान–आलू, धान–बरसीम, धान–सूरजमुखी अथवा धान–गेहूँ–मूंग, आदि फसलचक्रों को अपनाया जा सकता है। यदि संभव हो तो फसलचक्र में हरी खाद को शामिल किया जा सकता है। हरी खाद लगाने से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है और अगली फसल के उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होती है। यदि हरी खाद का फसल–चक्र में समावेश संभव न हो तो युग्म–उद्देशीय दलहनी फसलों जैसे मूंग, लोबिया, उड़द, मटर और ग्वार आदि को उगाया जा सकता है। उपरोक्त फसलों से फलियों को अलग करने

के बाद इनके अवशेषों को मिट्टी में मिलाया जा सकता है। इस प्रकार इन युग्म–उद्देशीय दलहनी फसलों को फसल–चक्र में शामिल करने से किसानों की आमदनी और मिट्टी की उर्वरा शक्ति में बढ़ोत्तरी होगी। उत्तरी भारत की गहरी मृदाओं में धान काटने के बाद आलू, बरसीम, चना, मसूर, सरसों, लाही अथवा गन्ना आदि को उगाया जाता है। उत्तरी भारत के मेंदानी क्षेत्रों में सिंचाई, बाजार आदि की सुविधा उपलब्ध होने पर निम्नलिखित फसल चक्र अपनाए जा सकते हैं:

धान–गेहूँ–लोबिया / उड़द / मूंग	(एक वर्ष)
धान–सब्जी मटर–मक्का	(एक वर्ष)
धान–चना–मक्का+लोबिया	(एक वर्ष)
धान–आलू–मक्का	(एक वर्ष)
धान–लाही–गेहूँ	(एक वर्ष)
धान–लाही–गेहूँ–मूंग	(एक वर्ष)
धान–बरसीम	(एक वर्ष)
धान–गन्ना–गन्ना पेड़ी–गेहूँ–मूंग	(तीन वर्ष)
धान–गेहूँ	(एक वर्ष)
धान–सब्जी मटर–गेहूँ–मूंग	(एक वर्ष)

बीज गुणवत्ता एवं उपयुक्त किस्में

धान उत्पादन में उन्नत प्रजातियों के बीज का योगदान काफी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे बीज के अभाव में फसलोत्पादन के अन्य साधनों का उपयोग विफल हो जाता है। सर्वप्रथम, ऐसी प्रजातियों के बीज का उपयोग किया जाए जो किसी क्षेत्र–विशेष एवं मृदा–दशा के लिए उपयुक्त हों। संकर किस्मों का बीज प्रति वर्ष बदलने की आवश्यकता होती है। अतः संकर बीज नया तैयार किया हुआ ही प्रयोग में लाना चाहिए। किसी किस्म के सही नाम तथा गुणों की जानकारी के लिए आवश्यक है कि बीज किसी विश्वसनीय विक्रेता, सरकारी संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय अथवा प्रादेशिक बीज निगमों से प्रमाणित बीज ही खरीदा जाए। बेहतर यही होगा कि बुवाई से पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता की जांच कर ली जाए। बुवाई से पूर्व बीज का उपचार परम आवश्यक होता है। आमतौर पर प्रमाणित बीज को उपचारित करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह पहले से ही उपचारित होता है। परंतु यदि पिछली फसल का बीज उपयोग में लाया जा रहा है तो उसका उपचार अति आवश्यक होता है। धान की खेती के लिए अपने क्षेत्र विशेष के लिए उन्नत किस्मों का ही प्रयोग करना चाहिए जिससे कि अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके। देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित धान की प्रमुख किस्में निम्न हैं:

अगेती किस्में (110–115): इनमें मुख्य रूप से पी एन आर–381, पी एन आर–162, नरेन्द्र धान–86, गोविन्द, साकेत–4, नरेन्द्र धान–97, सहभागी धान, संपदा, आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत पैदावार लगभग 4.5 –6.0 टन / हेक्टेयर तक है।

मध्यम अवधि की किस्में (120–125 दिन): इनमें मुख्य किस्में सरजू–52, पंतधान–10, पंतधान–12, आई आर.–64, कोटंडोरा सनालु, गोंतरा बिधान–1, खांडागिरी, महामाया एवं नवीन आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत उपज लगभग 5.5–6.5 टन / हेक्टेयर है।

लम्बी अवधि वाली किस्में (130–140 अथवा अधिक दिन): इस वर्ग में पूसा–44, पी आर 106, मालवीय–36, नरेन्द्र–359, महसूरी, ललाट, नरेंद्र 8002, पूजा, प्रतीक्षा, रानी धान, रंजीत, सांबा महसूरी एवं स्वर्णा सब–1, आदि प्रमुख किस्में हैं। इनकी औसत उपज लगभग 6.0–7.0 टन / हेक्टेयर है।

संकर किस्में: इनमें प्रमुख रूप से पंत संकर धान–1, के आर एच 2, पी एस डी 3, जी के 5003, पी ए 6444, पी ए 6201, पी ए 6219, डी आर आर एच 3, इंदिरा सोना, सुरुचि, नरेन्द्र संकर धान–2, प्रो. एग्रो. 6201, पी. एच बी –71, एच आर आई –120, आर एच 204 एवं पूसा राईस हाइब्रिड–10 (पी आर एच –10) आदि हैं।

बासमती किस्में: बासमती 386, टाइप 3, कस्तूरी, पूसा बासमती 1, पूसा बासमती 1509, पूसा बासमती 1609, पूसा बासमती 1121, हरियाणा बासमती 1, माही सुगंध, इम्प्रूव्ड पूसा बासमती 1 (पूसा 1460), वल्लभ बासमती 22, वल्लभ बासमती 23, वल्लभ बासमती 24, बासमती सी.एस.आर. 30, पूसा बासमती 1718, पूसा बासमती 1728 एवं पूसा बासमती 1637 आदि।

सुगन्धित किस्में: पूसा सुगंध 5, पूसा 1592 एवं पूसा 1612 आदि।

बीज शोधन एवं स्वस्थ पौध व्यवस्था

चुनी हुई किस्मों का बीज किसी मान्यता प्राप्त संस्था से ही लेना चाहिए। एक बार प्रमाणित बीज लेने के बाद उसे तीन साल तक बदलने की आवश्यकता नहीं होती है। अगर किसान भाई अपना बीज प्रयोग कर रहे हैं तो इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बीज में अंकुरण का प्रतिशत 80–90 होना चाहिए। बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लीटर पानी में घोल लें और इस घोल में 3.0 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाएगा और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि.ग्रा. बीज महीन दाने वाली किस्मों में तथा 25 कि.ग्रा. बीज मोटे दानों की किस्मों में एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है।

कवक एवं जीवाणुनाशी दवाओं के घोल से बीज का उपचार करने से बीज के द्वारा फैलने वाली कवक एवं जीवाणु–जनित बीमारियों का नियंत्रण हो जाता है। इसके लिए 10 ग्राम बाविस्टीन और 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लीन या 2.5 ग्राम एग्रीमाइसीन 10 लीटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लीटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए रखें। इस उपचार से जड़ गलन (फूट राट) झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियंत्रण में सहायता मिलती है। नर्सरी ऐसी भूमि में तैयार करनी चाहिए जो उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली व जल स्रोत के पास हो। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में धान की रोपाई के लिए 800–1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में पौध तैयार करना पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी की बुवाई का सही समय वैसे तो विभिन्न किस्मों पर निर्भर करता है। लेकिन 15 मई से लेकर 20 जून तक का समय बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है। धान की नर्सरी भीगी विधि से पौध तैयार करने का तरीका उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है। इसके लिए खेत में पानी भरकर 2–3 बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाए तथा खरपतवार नष्ट हो जाएं। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। जब मिट्टी की सतह पर पानी न रहे तो खेत को 1.25 से 1.50 मीटर चौड़ी तथा सुविधाजनक लंबी क्यारियों में बांट लें ताकि बुवाई, निराई एवं सिंचाई की विभिन्न सस्य क्रियाएं आसानी से की जा सकें। क्यारियां बनाने के बाद पौधशाला में 5 सें.मी. ऊंचाई तक पानी भर दें और अंकुरित बीजों को समान रूप से क्यारियों में बिखेर दें। पौधशाला के 800 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में लगभग 600–800 कि. ग्रा. गोबर की गली–सड़ी खाद, 8–12 कि.ग्रा. यूरिया, 15–20 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 5–6 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश एवं 2–2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से मिलाना चाहिए।

धान की पौधशाला में खरपतवारों, कीटों एवं रोगों से हानि पहुँच सकती है। साथ ही कई बार कुछ पोषक तत्वों की कमी के कारण पौध की कमजोर वृद्धि हो सकती है। उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था भी पौध की अच्छी बढ़वार में मदद करती है। यदि रोपाई में धान की कमजोर एवं बीमार पौध की रोपाई की जाती है तो मुख्य खेत से धान की अच्छी पैदावार नहीं मिलती है। धान पौधशाला में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 10–12 दिन बाद निराई अवश्य करें। यदि पौधशाला में अधिक खरपतवार होने की संभावना हो तो ब्यूटाक्लोर 50 ई सी शाकनाशी की 120 मि.लि. मात्रा 60 लीटर पानी में घोलकर 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में बुवाई के 4–5 दिन बाद छिड़क दें। यदि पौधशाला में कीटों का प्रकोप दिखाई दे तो रोगर 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिए। 800–1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल के लिए 60–65 लीटर घोल पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी में कभी–कभी लौह (आयरन) तत्व की कमी पाई जाती है खासकर ऊपरी भूमियों में जिनमें पानी लंबे समय तक रुक नहीं पाता है। लौह तत्व की कमी से पहले ऊपरी पत्तियाँ पीली हो जाती हैं। यदि यह कमी बनी रहती है तो सारी पत्तियां पीली होकर फिर सफेद रंग की हो जाती हैं। इसके बाद नर्सरी में पौध भूरे रंग की होकर सूख जाती है। इसके उपचार के लिए सबसे पहले नर्सरी में हल्का पानी खड़ा रखें और आयरन सल्फेट का

छिड़काव करें। आयरन सल्फेट (0.5%) तथा चूने (0.25%) के घोल को बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर छिड़क दें। नर्सरी के 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए 60–65 लीटर मिश्रित घोल पर्याप्त होगा।

खेत की तैयारी एवं बुवाई/रोपाई

धान की खेती के लिए अधिक जलधारण क्षमता वाली मृदाएं जैसे– चिकनी, मटियार या मटियार–दोमट मृदा प्रायः उपयुक्त होती हैं। मृदा का पीएच मान प्रायः 5.5–6.5 अधिक उपयुक्त होता है। यद्यपि धान की खेती 4.0 से 8.0 अथवा इससे भी अधिक पीएच मान वाली मृदाओं में की जा सकती है, परंतु सबसे अधिक उपयुक्त मृदा पी एच 6.5 वाली मानी गई है। क्षारीय और लवणीय मृदाओं में मृदा सुधारकों का समुचित उपयोग करके धान को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। धान उगाने की विभिन्न विधियों में एरोबिक (वायवीय) धान पद्धति, परंपरागत रोपाई विधि एवं धान सघनता पद्धति शामिल हैं।

यदि सिंचित परिस्थिति में एरोबिक (वायवीय) धान पद्धति (सीधी बुवाई) से धान को उगाया जा रहा है तो सबसे पहला कार्य है पलेवा। पलेवा करने से खेत की तैयारी में आसानी होती है और साथ ही धान का अंकुरण भी अच्छा होता है। पहली जुताई गहरी की जाए जिसके लिए मिट्टी–पलट हल अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इसके बाद 2–3 जुताई हैरो, देसी हल अथवा कल्टीवेटर से करने के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। इसके बाद यह खेत बुवाई योग्य हो जाता है। पंक्तियों में देसी हल अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 30–40 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20–25 सें.मी. अधिक उपयुक्त पाई गई है। बीज की उचित गहराई : 2–3 से.मी. है। सही जमाव तथा चिड़ियों से बीज के नुकसान को रोकने के लिए बीज को मिट्टी से ढक देना चाहिए। निचली एवं कम रेतीली भूमियों में बुवाई के बाद पाटा लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। सही अंकुरण के लिए बुवाई के समय पर्याप्त नमी होना चाहिए। पलवार का प्रयोग अधिक समय तक भूमि में नमी बनाए रखता है जिससे अंकुरण क्षमता बढ़ने के साथ–साथ खरपतवारों का भी नियंत्रण होता है। यदि खेत में नमी पर्याप्त न हो तो फसल को पलेवा करने के बाद बोया जाए अथवा बुवाई के तुरंत बाद एक हल्का पानी लगाना चाहिए। उत्तरी भारत में इसकी बुवाई का उपयुक्त समय जून का महीना है।

फसल उगाने की धान सघनता एवं परंपरागत रोपाई पद्धतियों में खेत की तैयारी लगभग एक सी ही होती है। सबसे पहले खेत की मेंडबंदी मजबूती से कर लें। साथ ही यदि खेत असमतल हो तो लेजर लेवेलर अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र से समतल कर लें। अब खेत में 6–8 सें.मी. पानी खड़ा करके 2–3 बार मिट्टी–पलट हल, देसी हल, हैरो, कल्टीवेटर या पड्लर से जुताई करें। इसके बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। यदि खेत में जायद अथवा ग्रीष्म–कालीन फसल ली है और उसमें काफी खरपतवार हों तो सिंह पटेला का प्रयोग करके इन खरपतवारों को खेत से बाहर निकाल दें। यह सिंह पटेला खेत तो समतल करने का कार्य भी साथ–साथ कर देता है। जब खेत में अंतिम जुताई (गारा/लेव बनाना) कर रहे हों तभी उर्वरकों की संस्तुत मात्रा का भी प्रयोग करें। अब यह खेत रोपाई योग्य हो जाता है। सामान्यतः जब पौध 21–25 दिन पुरानी हो जाए तथा उसमें 5–6 पत्तियां निकल जाएं तो यह रोपाई के लिए उपयुक्त होती है। पौध उखाड़ने के एक दिन पहले नर्सरी में अच्छी तरह से पानी भर देना चाहिए, जिससे पौध को आसानी से उखाड़ा जा सके तथा साथ ही साथ पौध की जड़ों को भी कम नुकसान हो। पौधों की जड़ों को धोते समय नुकसान न होने दें तथा पौधों को काफी नीचे से पकडे। पौध की रोपाई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। एक स्थान पर 2 से 3 पौध ही लगाएं। इस प्रकार एक वर्गमीटर में लगभग 50 पौधे होने चाहिए। अधिक उपज एवं भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखने के लिए हरी खाद या गोबर या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। हरी खाद हेतु सनई या ढ़ैंचे का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि सनई या ढैंचे से लगभग 50–60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

धान की फसल को धान सघनता पद्धति से भी उगाया जाता है। इसमें कम उम्र की पौध (<14 दिन) को एक

स्थान पर एक ही पौध लगाकर, जैविक खादों के प्रयोग से, कम जल एवं हाथ द्वारा चालित विशेष निराई–यन्त्र का प्रयोग कर अधिक उपज ली जाती है। इसमें खेत को लगातार जलमग्न रखने की आवश्यकता नहीं होती है। प्रारंभ में सिंचाई भूमि में नमी के स्तर को लगभग संतृप्त बनाये रखने तक की जाती है। भूमि के जलमग्न न होने से जड़ें स्वस्थ तथा गहराई तक चारो ओर बढती हैं। पौधों में ज्यादा दूरी होने से जड़ों का प्रसार अधिक होता है जिससे पौधों की वृद्धि भी अधिक होती है। बालियाँ निकलना शुरू होने से फसल के पकने तक खेत में 1–2 सें.मी. पानी खड़ा रखते हैं। खेत में पानी खड़ा न रहने से इस विधि में खरपतवारों की समस्या अधिक होती है। कोनोवीडर द्वारा रोपाई के 10 तथा 20 दिन बाद खरपतवारों को भूमि में पलटकर मिला दिया जाता है जोकि हरी खाद का काम करते हैं और खेत में जैविक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ाते हैं।

पछेती रोपाई (अधिक पौध उम्र) में सावधानियां

कुछ विशेष कारणों से कई बार धान की रोपाई देर से की जाती है। वर्षा–आधारित क्षेत्रों में कई बार वर्षा का आगमन देर से होता है अथवा वर्षा बहुत अधिक हो जाती है और ऐसी दशा में जलभराव के कारण समय पर रोपाई नहीं हो पाती है। देर से रोपाई के कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं। परंतु वर्षा समय पर होने की आशा में किसान धान की पौध (नर्सरी) की बुवाई कर देते हैं। जब रोपाई की उपयुक्त दशा आती है तब तक धान की पौध अधिक उम्र (पुरानी) की हो जाती है। साथ ही ऐसे समय पर धान की नई पौध तैयार करने का समय नहीं मिल पता है। अतः मजबूरन किसानों को रोपाई के लिए धान की पुरानी पौध का प्रयोग करना पड़ सकता है। उपरोक्त दशा में यदि कुछ विशेष सस्य–क्रियाओं को अपनाया जाए तो ऐसी पुरानी पौध के प्रयोग से भी धान की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

आमतौर पर किसानों को सलाह दी जाती है कि धान की पौध की रोपाई के लिए उपयुक्त उम्र 20–25 दिन (जल्दी पकने वाली/मध्यम–अवधि में पकने वाली किस्में) अथवा 25–30 दिन (दीर्घावधि में पकने वाली किस्में) उपयुक्त होती है। परंतु जब मानसून देर से आता है तब पौध की उम्र (35 –50 दिन) तक हो सकती है। कई बार समय पर उर्वरक अथवा कृषि यंत्र न मिलने के कारण भी पौध की समय पर रोपाई करना संभव नहीं हो पाता है। यानि एक तो धान की पौध पुरानी हो चुकी है और उसकी रोपाई भी देर से की जा रही है, ऐसी परिस्थिति में किसानों को निम्नलिखित सलाह दी जा रही है ताकि धान से अच्छी उपज ली जा सकेः

- रोपाई की दूरी घटा देना चाहिए जिससे प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की संख्या बढ़ जाती है। आमतौर पर 20 से.मी. x 10 से.मी. दूरी पर धान को रोपा जाता है जिससे प्रति वर्गमीटर 50 पौधे आते हैं। परंतु अधिक उम्र के पौधों को 15 से.मी. x 10 से.मी. दूरी पर रोपा जाना चाहिए जिससे प्रति वर्गमीटर 60 पौधे आ जाते हैं।
- एक स्थान पर 3–5 पौधों की रोपाई करें।
- पौधों की लंबाई को कम कर लेना चाहिए। पौध की चोटी से कटाई करके उसे छोटा कर लेना चाहिए। साथ में साइड में निकली हुई पत्तियों को भी बीच से काट देना चाहिए। यदि पौध पर अधिक पत्तियाँ होंगी तो वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाले पानी की अधिक क्षति होगी और पौध को स्थापित होने में अधिक समय लगेगा अथवा कई बार पौध सूख भी सकती है। क्योंकि जड़ों द्वारा आरंभ में पानी का बहुत कम अवशोषण होता है अतः ऐसे समय पर यदि पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन होता है तो पौधे सूख जाते हैं।
- **उर्वरकों का प्रयोगः** पछेती धान में उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा देना चाहिए। आमतौर पर उर्वरकों की संस्तुत मात्रा से 1.25 से 1.50 गुना अधिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अपनी पछेती फसल की लगातार देखभाल करते रहें। बाकी सस्य–क्रियाएं जैसे खरपतवार प्रबंधन, कीड़े–मकोड़ों एवं रोगों का प्रबंधन समय से रोपाई किए गए धान की भांति करें।

दक्ष पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। धान की बौनी किस्मों के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं

25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। अधिक पैदावार देने वाली बासमती किस्मों के लिए 100–120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50–60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40–50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20–25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर देना चाहिए। जबकि संकर धान के लिए 130–140 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60–70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50–60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25–30 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। यूरिया की पहली तिहाई मात्रा का प्रयोग रोपाई के 5–8 दिन बाद करें जब पौधे अच्छी तरह से जड़ पकड़ लें। दूसरी एक तिहाई यूरिया की मात्रा कल्ले फूटते समय (रोपाई के 25–30 दिन बाद) तथा शेष एक तिहाई हिस्सा फूल आने से पहले (रोपाई के 50–60 दिन बाद) खड़ी फसल में प्रयोग करें। फास्फोरस की पूरी मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट या डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी.ए.पी.) के द्वारा, पोटाश की भी पूरी मात्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश के माध्यम से एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा धान की रोपाई करने से पहले अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। यदि पोषक तत्वों की आपूर्ति एनपीके उर्वरकों से की जा रही है तो उर्वरक की आवश्यक मात्रा का प्रयोग रोपाई के समय पर किया जाए तथा नाइट्रोजन की शेष मात्रा की आपूर्ति यूरिया उर्वरक से करना चाहिए। यदि किसी कारणवश पौध रोपते समय जिंक सल्फेट खाद न डाला गया हो तो इसका छिड़काव भी किया जा सकता है। इसके लिए 15–20 दिनों के अन्तराल पर 3 छिड़काव 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ करने चाहिए।

खरपतवारों का समेकित प्रबंधन

रोपाई किए गए धान की अपेक्षा सीधी बुवाई किए गए धान में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता हैं। धान की सामान्य फसल की वृद्धि के साथ ही कई प्रकार के चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले खरपतवार उग आते हैं। जो फसल में दिए गए पानी और पोषक तत्वों के अधिकांश भाग का अवशोषण कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप धान की गुणवत्ता और पैदावार में भारी कमी आ जाती है। इस प्रकार किसानों को अपनी फसल का अपेक्षित मूल्य नही मिल पाता है। धान की परंपरागत विधि से रोपित फसल में प्रथम 30 से 60 दिनों तक तथा सीधी बुवाई से उगाए धान में बुवाई के पहले 6 सप्ताह तक फसल–खरपतवार स्पर्धा का सबसे महत्वपूर्ण क्रांतिक काल (समय) माना जाता है। यदि इस समय खरपतवारों की रोकथाम नहीं की जाती है तो रोपाई किए गए धान की पैदावार में 10–40 प्रतिशत तक तथा सीधी बुवाई किए गए धान की पैदावार में 50 प्रतिशत से भी अधिक गिरावट आ जाती है। अच्छी फसल स्वयं खरपतवार को मारती है। सस्य क्रियाओं से भी खरपतवारों की रोकथाम करके अच्छी फसल ले सकते हैं परंतु ये सस्य क्रियाएं सभी फसलों में एक जैसी संस्तुत नहीं कर सकते हैं ।

गर्मी के मौसम (मई–जून) में खेत की गहरी जुताई करके छोड़ देते हैं। जिससे मृदा में दबे हुए खरपतवारों के बीज एवं अन्य प्रजनक भाग खेत की सतह पर आकर स्वयं नष्ट हो जाते हैं। खरपतवारों की रोकथाम के साथ–साथ ही इस विधि से कीड़े–मकोडों एवं सूत्रकृमियों का नियंत्रण भी हो जाता हैं। बुवाई के पहले भूमि की सिंचाई करते देते हैं और 15–20 दिन के लिए भूमि को वैसा ही छोड़ देते हैं, जिसमें सभी वार्षिक खरपतवार उग आते हैं। इसके बाद इन खरपतवारों को जुताई करके या पैराक्वाट (1.0 कि.ग्रा./है.) का छिड़काव करके नष्ट कर देते हैं। इसके बाद में फसल की बुवाई करते हैं। फसल अवधि के दौरान कई बार निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण करना पड़ता है। वैसे फसल बोने के बाद में तथा उगने से पहले खरपतवारनाशी दवाई छिड़ककर और बुवाई के 25–30 दिन के बाद एक बार हाथ द्वारा निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण करना एक अच्छा तरीका है। आजकल श्रमिकों की कम उपलब्धता और उनकी अधिक मजदूरी के कारण पारंपरिक विधियों के द्वारा (निराई–गुड़ाई) खरपतवार नियंत्रण करना असम्भव सा होता जा रहा है। अतः रसायनों के द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण जल्दी, कम लागत में व प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है और यह विधि आर्थिक दृष्टिकोण से भी लाभकारी है। धान की विभिन्न पद्धतियों में प्रयोग किए जाने वाले प्रमुख शाकनाशी, उनकी मात्रा और प्रयोग विधि का विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

सारणी 1. धान की फसल में खरपतवारनाशी दवाइयों की सिफारिश

शाकनाशी	सक्रिय तत्व की मात्रा (कि.ग्रा./ है.)	प्रयोग का समय	टिप्पणी
पेन्डीमेंथेलिन	1.0–1.5	बुवाई या रोपाई के 1–2 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों का नाश करती है। इसे छिड़कते समय भूमि में भरपूर नमी होनी चाहिए।
आक्सीडायरजाइल	0.080–0.100	बुवाई या रोपाई के 2–3 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों का नाश करती है। इसे छिड़कते समय भूमि में भरपूर नमी होनी चाहिए।
पाइराजोसल्फ्यूरोन ईथाइल	0.020–0.025	बुवाई या रोपाई के 1–2 दिन बाद	सावंक के प्रभावी नियंत्रण हेतु उपयुक्त, प्रयोग के समय खेत से पानी निकाल दें
प्रेटिलाक्लोर् सेफनर	0.750	बुवाई या रोपाई के 3–5 दिन बाद	सभी प्राकर के घास जाति व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है
बिसपाईरीबैक–सोडियम	0.020–0.025	बुवाई या रोपाई के 25–30 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों का नाश करती है। वर्षा की आशंका हो तो छिड़काव न करें। इस दवाई को सल्फर या कॉपर पेस्टीसाइड के साथ मिलाकर न छिड़कें।
पेन्डीमेंथेलिन एवं उसके बाद बिसपाईरीबैक सोडियम	1.0–1.50 तथा 0.025	बुवाई/रोपाई के 1–2 दिन बाद तथा बुवाई/ रोपाई के 25–30 दिन बाद	व्यापक स्पेक्ट्रम खरपतवार नियंत्रण के लिए

कीटों का समेंकित प्रबंधन

फसल को कीटों से बचाना आवश्यक होता है। कीट नियंत्रण के लिए समेंकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) को अपनाना बेहतर होता है। इसमें कीड़ों के प्रकोप को कम करने के लिए नियंत्रण के विभिन्न तरीकों जैसे प्रतिरोधी किस्मों, शस्य क्रियाओं, यांत्रिक विधियों, व्यवहारिक विधियों, जैविक विधियों तथा रासायनिक विधियों का एकीकृत ढंग से उपयोग किया जाता है। आई.पी.एम. में कीटनाशियों को अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए ना कि पहली पसंद के रूप में। कीटनाशियों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए और इनके अनुचित या अत्यधिक प्रयोग से बचना चाहिए। कीटनाशियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कीड़ों के आर्थिक दहलीज स्तर (ई.टी.एल.) प्रमाणित किए गए हैं। आर्थिक दहलीज स्तर पर कीट नियंत्रण से न केवल कीटनाशियों पर होने वाले व्यर्थ खर्च से बचा जा सकता है बल्कि इनसे पर्यावरण को होने वाले नुकसान से भी बचा जा सकता है। तना छेदक, पत्ती लपेटक, हिस्पा, गंधी एवं भूरा फुदका धान के महत्वपूर्ण कीट हैं। खरपतवारों का नियंत्रण, उचित पौध संख्या, समय पर बुवाई/रोपाई एवं संतुलित उर्वरक प्रयोग करके कीड़ों की संख्या में कमी लाई जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर तना छेदक, पत्ती लपेटक, एवं भूरा फुदका के नियंत्रण के लिए दानेदार कीटनाशी कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 4जी/25 कि.ग्रा./हैक्टेयर बुरकाव करें अन्यथा क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी/2 मिलि/लीटर या क्विनलफॉस 25 ईसी 2 मिलि/ लीटर या कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी/1 ग्राम/ लीटर का छिड़काव करें। गंधी कीट के नियंत्रण के लिए ऐसीफेट 75 एसपी/1.5 ग्राम/ लीटर या क्विनलफॉस 25 ईसी 2 मिलि/लीटर या डीडीवीपी 76 ईसी 1.5 मिलि/ लीटर का छिड़काव करें।

समेकित रोग प्रबंधन

रोग फसल की भरपूर पैदावार लेने में बाधक होते हैं। इसलिए रोगों की पहचान कर, समय पर इनका नियंत्रण करके भरपूर पैदावार ली जा सकती है। अतः धान के मुख्य रोगों की पहचान एवं इनकी रोकथाम आवश्यक है। धान की फसल मुख्य तौर पर बदरा, जीवाणु पत्ती अंगमारी, भूरा धब्बा, आभासी कंड, पर्णच्छद अंगमारी या शीथ ब्लाइट,

बकानी और खैरा, आदि रोगों से प्रभावित होती है। समेंकित रोग प्रबंधन में उपलब्ध सस्य–क्रियाओं (उचित फसल चक्र, समय पर रोपाई / बुवाई, खरपतवार नियंत्रण, बीज उपचार, संतुलित उर्वरक प्रयोग), जैविक एवं रासायनिक विधियों के उपयुक्त समायोजन से किया जाता है। साथ ही रोग–रोधी किस्मों को भी इसमें शामिल किया जाता है। अगर उपरोक्त उपाय अपनाने के बावजूद भी रोग आ जाते हैं तो संस्तुत रसायन का प्रयोग करके उसकी रोकथाम करें। उदाहरण के लिए पत्ती जीवाणु झुलसा के नियंत्रण के लिए 74 ग्राम एग्रीमाइसीन–100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलान / ब्लाइटॉक्स–50 / क्यूप्राविट) का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से तीन–चार बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग प्रकट होने पर तथा आवश्यकतानुसार 10 दिन के अन्तराल पर करें। इसी प्रकार यदि पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगें (बदरा रोग) तो कार्बेन्डाजिम 1000 ग्राम या ट्राइसायक्लेजोल 500 ग्राम का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें।

धान भारतवर्ष की सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण खाद्यान फसल है। समुचित खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने के लिए धान की उत्पादकता बढ़ाना परम आवश्यक है। ठोस वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं क्रियाओं पर आधारित फसल उत्पादन द्वारा ही खाद्य, पोषण एवं पर्यावरण सुरक्षा को प्राप्त किया जा सकता है। धान उत्पादन में उपयुक्त सस्य विधियां अपनाकर एवं उत्पादन–लागत में कमी लाकर इस फसल से किसानों को होने वाली आय में वृद्धि की जा सकती है। अनुसंधान परिणामों से ज्ञात हुआ है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों की उत्तम गुणवत्ता का स्वस्थ बीज, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, दक्ष खरपतवार प्रबंधन, समुचित जल, कीट एवं रोग प्रबंधन, उपयुक्त समय पर फसल की कटाई एवं मड़ाई तथा उपयुक्त भंडारण इत्यादि अपनाकर किसान भाई लागत कम करके धान उत्पादन में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। इस उपलब्धि के लिए धान उत्पादन की आधुनिक वैज्ञानिक विधियों एवं नवीनतम तकनीकियों को अपनाना आवयश्क होगा।

विभिन्न क्षेत्रों के लिए बाजरे की नविनतम किस्में

एस. पी. सिंह, मुकेश शंकर एस., एवं सी. तारा सत्यवती*
आनुवंशिकी संभाग, भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली
*परियोजना समन्वयक, ए. आई. सी. आर. पी., बाजरा, (भा.कृ.अ.प.) मंडोर, जोधपुर

देश के वर्षा आधारित क्षेत्रों के गरीब एवं कम जोत वाले किसानों के लिए बाजरा एक मुख्य फसल है। जिसका उपयोग भोजन एवं चारे के रूप में मुख्य रूप से किया जाता है। इसका भोजन एवं चारा दोनों ही पोषक तत्वों से भरपूर है। यह कम समय में पकने वाली है एवं इसे कम खाद पानी की आवश्यकता होती है। बाजरे की खेती विषम परिस्थितियों में की जाती है जहाँ अन्य फसलें या तो उगाई नहीं जा सकती या उनका उत्पादन आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं होता। बाजरे में लवण जैसे लोहा, जस्ता, कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इन सभी गुणों के बावजूद, बाजरे को निम्न श्रेणी की फसल माना जाता है। इसका मुख्य कारण जानकारी का अभाव है। बाजरा गेहूँ एवं धान के बाद तीसरे नंबर की मुख्य फसल है। वर्ष 2016-17 के दौरान, बाजरे की खेती 7.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में की गई एवं बाजरे का औसत उत्पादन 9.73 मिलियन टन रहा । इस अवधि के दौरान बाजरे की उत्पादकता 1305 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रही। क्षेत्रफल के अनुसार देश का 90 प्रतिशत बाजरा पांच राज्यों राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा में उगाया जाता है। बाजरा मुख्यतः खरीफ सीजन की फसल है। यह गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में ग्रीष्म–सीजन (फरवरी–मई) एवं महाराष्ट्र एवं गुजरात के कुछ हिस्सों में इसकी खेती रबी–सीजन (नवंबर–फरवरी) में भी की जाती है। पिछले चार वर्षों के आधार पर राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं गुजरात राज्यों में बाजरे का लगभग 95 प्रतिशत क्षेत्र है जिससे लगभग 88 प्रतिशत उत्पादन हुआ है।

बाजरा उगाने वाले क्षेत्र

जलवायु एवं वर्षा के आधार पर देश के बाजरा उगाने वाले क्षेत्रों को तीन भागों में विभक्त किया गया है।

क्षेत्र $ए_1$– इसके अंतर्गत राजस्थान, हरियाणा एवं गुजरात के वे हिस्से आते हैं जहाँ वर्षा 400 मिलीमीटर से कम होती हैं।

क्षेत्र ए– इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात के वे क्षेत्र आते हैं जहाँ वर्षा 400 मिमी से अधिक होती है। इस क्षेत्र में बलुई एवं बलुई–दोमट मिट्टी होती है। इस क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले राज्यों के कुछ हिस्सों में सिंचाई की भी सुविधा होती है।

क्षेत्र बी– इसके अंतर्गत महाराष्ट्र एवं दक्षिणी भारतीय राज्य जैसे आंध्र प्रदेश, कर्नाटक व तमिलनाडु आते हैं। इस क्षेत्र में भी वर्षा 400 मिमी से अधिक होती है।

किस्मों का चुनाव– बाजरे में किस्मों का विकास जोन के अनुसार हुआ है। हर जोन के लिए संकर एवं संकुल दोनों किस्मों का विकास हुआ है। संकर किस्मों की उपज संकुल किस्मों से अधिक होने के कारण किसानों का प्रथम विकल्प संकर किस्म ही होनी चाहिए। इस लेख में वर्ष 2012-2018 तक विकसित किस्मों का विवरण दिया गया है। इन किस्मों का किसान भाई, अपने क्षेत्र के अनुसार चुनाव कर सकते हैं ।

वर्ष 2012 से 2018 के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के लिए विकसित बाजरे की किस्में- वर्ष 2012 से 2018 के दौरान ए 1 जोन के लिए बाजरे की 6 संकर किस्में जैसे आर. एच. बी. 223, जे. के. बी. एच. 1108, एम्. पी. एम्. एच. 21, एच. एच. बी. 272, एच. एच. बी. 234 एवं बायो 70 विकसित की गई। इस अवधि के दौरान ए जोन के लिए बाजरे की 14 संकर किस्में जैसे पी. बी. 1705, पी. बी. एच. 306, एक्स. एम्. टी. 1497, के. बी. एच. 3940, 86 एम् 82, बायो 8145, 86 एम् 84, के. बी. एच. 108,

जी. एच . बी 905, 86 एम् 89, एम्. पी. एम्. एच. 17, बायो 448, एम्. पी. 7872, एम्. पी. 7792 एवं एक संकुल किस्म पूसा कम्पोजिट 701 विकसित हुई। इसी प्रकार बी जोन के लिए 6 संकर किस्में (एन. बी एच. 4903, 86 एम्. 88, एन. बी एच 5061, एन. बी एच. 5767, प्रताप एवं शाइन एवं एक संकुल किस्म ,ए. बी. वी. 04 भी विकसित हुई। विगत 6 वर्षों में कुछ ऐसी भी संकर एवं संकुल किस्में विकसित हुई हैं जो बाजरा उगाने वाले सभी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं जैसे ए. एच. बी. 1200, एच. एच. बी. 299, 86 एम् 01, 86 एम् 13, 86 एम् 86, नंदी 75, कावेरी सुपर बॉस एवं संकुल किस्म धनशक्ति को सभी क्षेत्रों में उगाया जा सकता है (तालिका 1 एवं 2)

राज्य विशेष के लिए विकसित किस्में— दिल्ली एवं आस पास के क्षेत्रों के लिए पूसा 1201; राजस्थान के लिए जी. के. 116, एन. बी. एच. 4903, बी. एच. बी. 1202, प्रोएग्रो तेजस; महाराष्ट्र के लिए महाबीज, फुले आदिशक्ति, पी. के. वी. राज (बी. बी. एच. 3,) ए. बी. पी. सी.–4–3; उत्तर प्रदेश के लिए जे. के. बी. एच. 1100; तमिलनाडु के लिए को. 9, को 10 एवं पंजाब के लिए पी. एच. बी. 2884 विकसित हुई।

अधिक आयरन एवं जस्ता युक्त किस्में — इस अवधि के दौरान कुछ ऐसी संकर एवं संकुल किस्में भी विकसित हुई जिनमें आयरन एवं जस्ता जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व अधिक मात्रा में है। इस श्रेणी में मुख्य रूप से दो संकर किसमें ए. एच. बी. 1200, एच. एच. बी. 299 एवं एक संकुल किस्म धनशक्ति आती हैं।

भारतीत कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित बाजरे की नवीनतम किस्में— वर्ष 2012 से 2016 के दौरान पूसा संस्थान द्वारा एक संकुल एवं एक संकर किस्म का विकास किया गया। पूसा संकुल किस्म वर्ष 2016 में सात राज्यों (राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश) के लिए जारी की गई। इसकी औसत उपज 2.3 टन प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म 80 दिन में पककर तैयार हो जाती है। पूसा संकुल किस्म 701 डाउनी मिल्डू एवं ब्लास्ट रोग के लिए अवरोधी है। पूसा संस्थान द्वारा एक संकर किस्म पूसा 1201 भी वर्ष 2018 में दिल्ली एवं आस पास के क्षेत्रों के लिए विकसित की गई। इसकी औसत दाने की उपज 2.8 प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म 80 दिन में पककर तैयार हो जाती है। पूसा 1201 डाउनी मिल्डू एवं ब्लास्ट रोग के लिए अवरोधी है। इस किस्म में 55 पी. पी. एम्. आयरन एवं 48 पी. पी. एम् जस्ता विद्यमान है ।

तालिका 1ः वर्ष 2012 से 2018 के दौरान विकसित बाजरे की विभिन्न राज्यों के लिए संस्तुत किस्में

क्रमांक	राज्य	किस्में
1	राजस्थान	जी. के 1116 (एम्. एच. 1974) ए जी. के 1116 (एम्. एच. 1974) ए बी. एच. बी 1202 (एम्. एच. 1831) ए ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए आर. एच. बी. 223 (एम्. एच. 1998) (ए 1) ए जे. के. बी. एच. 1008 (एम्. एच. 1828) (ए 1) ए एक्स. एम्. टी. 1497 (एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए नंदी 75 (एवं एस. एच. 287) (एन. एम्. एच. 82) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए 86 एम्.13 (एम्ण एस. एच. 276) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए एम्. पी. एम्. एच. 21 (एम्. एच. 1777) (ए 1)एएच. एच. बी. 272 (एम्. एच. 1837) (ए 1) ए प्रोएग्रो तेजसए 86 एम्. 01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. 1655) ए नंदी .72 (एम्. एस.एच. .238) (एन. एम्. एच. 75) ग्रीष्मकालीनए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए एच. एच. बी. 234 (एम्. एच. 1561) (ए 1) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 70 (एम्. एच. 1632) (ए 1) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671द्ध ए नंदी .70 (एम्. एस. एच 224) ग्रीष्मकालीनए एम्. पी. .7872 (एम्. एच. 1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. 1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535)ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)

2	गुजरात	ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए . एच. बी. 223 (एम्. एच. 1998) (ए 1) ए जे. के. बी. एच.1008 (एम्. एच. 1828) (ए 1) एएक्स. एम्. टी. 1497 (एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए नंदी 75 (एम्. एस. एच. 287) (एन. एम्. एच. 82) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए 86 एम्.13 (एम्. एस. एच. 276) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए एम्. पी. एम्. एच. 21 (एम्. एच. 1777) (ए 1)ए एच. एच. बी. 272 (एम्. एच. 1837) (ए 1) ए86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. .1655द्धए नंदी .72 (एम्. एस.एच. .238) (एन. एम्. एच. 75) ग्रीष्मकालीन ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए एच. एच. बी. 234 (एम्. एच.1561) (ए 1)ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 70 (एम्. एच. 1632) (ए 1) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए नंदी .70 (एम्. एस. एच 224) ग्रीष्मकालीन ए एम्. पी. .7872 (एम्. एच.1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. .1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535)ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ. 10–2)
3	हरियाणा	ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए . एच. बी. 223 (एम्. एच. 1998) (ए 1)ए जे. के. बी. एच.1008 (एम्. एच. 1828) (ए 1) ए एक्स. एम्. टी. 1497 (एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए एम्. पी. एम्. एच. 21 (एम्. एच. 1777) (ए 1)ए एच. एच. बी. 272 (एम्. एच. 1837) (ए 1) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. 1655) ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए एच. एच. बी. 234 (एम्. एच. 1561) (ए 1) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 70 (एम्. एच 1632) (ए 1) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए एम्. पी. 7792 (एम्. एच. 1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)
4	पंजाब	ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए एक्स. एम्. टी. 1497 (एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 940 (एम्. एच. 1984) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए पी. एच. बी. 2884ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. 1655) ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए एम्. पी. .7872 (एम्. एच. 1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. 1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535) ए धनशक्ति आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)
5	दिल्ली	पूसा 1201 (एम्. एच. 1849) ए ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. .1655) ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच.1553) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए एम्. पी. .7872 (एम्. एच. .1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. .1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535)
6	उत्तर प्रदेश	पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए एक्स. एम्. टी. 1497 (एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए नंदी 75 (एम. एस. एच. 287) (एन. एम्. एच. 82) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए 86 एम्.13 ;एम्. एस. एच. 276) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए जे. के. बी. एच. 1100 (एम्. एच. 1810) ए जे. के. बी. एच. 1105 (एम्. एस. एच 254) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 (एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. 1655) ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए एम्. पी. .7872 (एम्. एच. 1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. .1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)

7	मध्य प्रदेश	पी. बी. 1705 (एम्. एच. 2008) ए एक्स. एम्. टी. 1497) एम्. एच. 1928) ए के. बी. एच. 3940 (एम्. एच. 1984) ए 86 एम्. 82 (एम्. एच. 1888) ए बायो 8145 (एम्. एच. 1970) ए 86 एम्. 84 (एम्. एच. 1890) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए के. बी. एच. 108 ;एम्. एच. 1737) ए जी. एच. बी. .905 (एम्. एच. 1655) ए 86 एम्. 89 (एम्. एच. 1747) ए एम्. पी. एम्. एच. 17 (एम्. एच. 1663) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए बायो 448 (एम्. एच. 1671) ए एम्. पी. .7872 (एम्. एच. 1610) ए एम्. पी. .7792 (एम्. एच. 1609) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए पूसा संकुल 701 (एम्. पी. 535) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)
8	महाराष्ट्र	ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए एन. बी. एच. 4903 (एम्. एच. 2035) ए महाबीज 1005 (एम्. एच.1852) ए पी. बी. एच. 306 (एम्. एच. 1962) ए नंदी 75 (एम्. एस. एच. 287) (एन. एम्. एच. 82) ए 86 एम्.13 (एम्. एस. एच. 276) ए फुले आदिशक्ति (डी. एच. बी. एच. 9071) ए 86 एम्.88 (एम्. एच. 1816) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए एन. बी. एच. 5061 (एम्. एच. 1812) ए एन. बी. एच. 5767 (एम्. एच. 1785) ए नंदी .72 ;एम्. एस.एच. .238) (एन. एम्. एच. 75) ग्रीष्मकालीनए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए नंदी .70 (एम्. एस. एच 224) ग्रीष्मकालीनए प्रताप (एम्. एच. 1642) ए पी. के. वी.–राज (बी. बी. एच. 3) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए शाइन (वी. बी. बी. एच. 3040) (एम्. एच. 1578) ए ए. बी. वी. 04 (एम्. पी. 552) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2) एए. बी. पी. सी. –4–3 (एम्. पी. 484)
9	आंध्र प्रदेश	एन. बी. एच. 4903 (एम्. एच. 2035) ए पी. बी. एच. 306 (एम्. एच. 1962) ए 86 एम्.88 (एम्. एच. 1816) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए एन. बी. एच. 5061 (एम्. एच. 1812) ए एन. बी. एच. 5767 (एम्. एच. 1785) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए प्रताप (एम्. एच. 1642) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए शाइन (वी. बी. बी. एच. 3040) (एम्. एच. 1578) ए ए. बी. वी. 04 (एम्. पी. 552) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)
10	कर्नाटक	एन. बी. एच. 4903 (एम्. एच. 2035) ए पी. बी. एच. 306 (एम्. एच. 1962) ए 86 एम्.88 (एम्. एच. 1816) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए एन. बी. एच. 5061 (एम्. एच. 1812) ए एन. बी. एच. 5767 (एम्. एच. 1785) ए कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए प्रताप (एम्. एच. 1642) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए शाइन (वी. बी. बी. एच. 3040) (एम्. एच. 1578) ए ए. बी. वी. 04 (एम्. पी. 552) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)
11	तमिलनाडु	ए. एच. बी 1200 (एम्. एच. 2072) ए एच. एच. बी. 299 (एम्. एच. 2076) ए एन. बी. एच. 4903 (एम्. एच. 2035) ए पी. बी. एच. 306 (एम्. एच. 1962) ए नंदी 75 (एम्. एस. एच. 287) (एन. एम्. एच. 82) ए 86 एम्.13 (एम्. एस. एच. 276) ए को. 10ए 86 एम्.88 (एम्. एच. 1816) ए 86 एम्.01 (एम्. एच. 1790) ए एन. बी. एच. 5061 (एम्. एच. 1812) ए एन. बी. एच. 5767 (एम्. एच. 1785) ए नंदी .72 (एम्. एस.एच. .238) (एन. एम्. एच. 75) ग्रीष्मकालीन, कावेरी सुपर बॉस (एम्. एच. 1553) ए नंदी .70 (एम्. एस. एच 224) ग्रीष्मकालीन, प्रताप (एम्. एच. 1642) ए 86 एम्. 86 (एम्. एच. 1684) ए को. 9ए शाइन (वी. बी. बी. एच. 3040) (एम्. एच. 1578) ए ए. बी. वी. 04 (एम्. पी. 552) ए धनशक्ति (आई. सी. टी. पी. 8203 ऍफ़. इ.10–2)

खरीफ मक्का की उन्नत उत्पादन तकनीकियाँ

शंकर लाल जाट, सी.एम.परिहार, भूपेंद्र कुमार,

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

भारत में लगभग 80% मक्का की खेती खरीफ के मौसम में होती है। भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों में मक्का की फसल को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, हिमाचल प्रदेश, जम्मु एवं कश्मीर तथा उत्तरी पूर्व राज्यों में मक्का मुख्यतया उगायी जाती है। मक्का न केवल विविध पारिस्थितियों, जलवायु, मृदा आदि में उगाई जाने वाले फसल है अपितु यह कई विकल्प और प्रकार वाली अनाज की फसल है। मक्का के विभिन्न प्रकार हैं– सामान्य पीला/सफेद अनाज, मीठी मक्का, शिशु मक्का, पॉप कॉर्न, गुणवत्ता प्रोटीन मक्का (फच्ड), मोमी मक्का, उच्च तेल मक्का, चारा मक्का, आदि हैं। हालांकि भारतवर्ष में मक्का की उत्पादकता वैश्विक औसत उत्पाद्कता के मुकाबले आधी ही है परन्तु इसकी प्रतिदिन उत्पाद्कता वैशविक उत्पाद्कता की तुलना में बराबर या अधिक है। हालाँकि वर्तमान उत्पादकता स्तर को लगभग दुगुना उन्नत कृषि तकनीकियों को अपनाने से किया जा सकता है। मक्का की कम उपज के प्रमुख कारण मक्का की 75% क्षेत्रफल में वर्षा आधारित खेती, समुचित संकर किस्मों को न अपनाना, खरपतवारों की समस्या, असंतुलित उर्वरक प्रयोग, कीट एवं व्याधियां है। इस आलेख में विभिन्न प्रकार की मक्का में लाभप्रदता बढाने हेतु खरीफ ऋतू में प्रमुख कृषि कार्यों पर चर्चा की गयी है जिनको समुचित उन्नत प्रजाति के साथ अपनाने से किसान की शुद्ध आमदनी बढ़ेगी ।

भूमि का चयन एवं तैयारी

मक्का की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। उचित जल निकासयुक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा जिसमें वायु संचार एवं पानी निकास की उत्तम व्यवस्था हो तथा पी.एच मान 6.5 से 7.5 के बीच हो (अर्थात न अम्लीय हो न ही क्षारीय) में मक्का की फसल सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। जहाँ पर सिचाई में नमकीन पानी की समस्या है वहाँ मक्का की बिजाई मेंड़ के उपर की बजाय साइड में करें जिससे पौधे की जडे नमक से प्रभावित न हों।

खरीफ की फसल के लिए खेत की तैयारी जून के दूसरे सप्ताह में शुरू कर देनी चाहिए तथा एक गहरी जुताई (15–20 से.मी.) मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। अगर खेत गर्मियों में खाली हैं तो जुताई गर्मियों में करना अधिक लाभदायक रहता है। इस जुताई से खरपतवार, कीट पतंगें व बीमारियों की रोकथाम में काफी सहायता मिलती है। खेत की नमी को बनाये रखने के लिए कम से कम समय में जुताई करके तुरन्त पाटा लगाना लाभदायक रहता है। जुताई का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना है। अगर किसान भाई नवीनतम जुताई तकनीक जैसे संरक्षित खेती/शून्य जुताई (भूपरिष्करण) का उपयोग न कर रहे हों तो शुन्य जुताई वाले उपकरण जैसे मल्टी क्रॉप प्लान्टर का उपयोग कर सीधी बुवाई करें। इस प्रकार की विधि में जुताई की आश्यकता नहीं होती है। अगर संम्भव हो तो समय एवं धन की बचत के लिए संरक्षित खेती/संसाधन प्रबंधन तकनीक का ही इस्तेमाल करें।

बुआई का समय एवं बीज दर

मक्के की बुआई वर्ष भर कभी भी खरीफ, रबी एवं जायद ऋतु में कर सकते हैं लेकिन ,खरीफ ऋतु में बुआई मानसून पर निर्भर करती है। अधिकतर जगहों पर जहां सिचांई सुविधा उपलब्ध हो वहां पर खरीफ में बुआई का उपयुक्त समय मध्य जून से मध्य जुलाई हैं।

प्रति एकड़ बीज की मात्रा एवं कतार (लाइन) से कतार (लाइन) तथा पौधों से पौधो की दूरी निम्नलिखित सारणी में दी गई हैः

विवरण	सामान्य मक्का	क्यू. पी. एम.	बेबी कॉर्न	स्वीटकॉर्न	पॉपकॉर्न	चारे हेतु
बीज की मात्रा (कि.ग्रा./एकड़)	8–10	8	10–12	2.5–3	4–5	25–30
लाइन से लाइन की दूरी (से.मी.)	60–75	60–75	60–75	60	60	30
पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.)	20–25	20–25	20–22	15–20	15–20	10

सभी प्रकार की मक्का के बीजों को 3.5–5.0 से.मी. गहरा बोना चाहिए, जिससे बीज मिट्टी से अच्छी तरह से ढक जायें तथा अंकुरण अच्छा हो सके ।

बीज उपचारः

मक्के के बीजों को बीज एवं मृदा जनित रोगों एवं कीट–व्याधियों से बचाने के लिए बुवाई से पहले कवकनाशियों तथा कीटनाशियों से नीचे दिऐ विवरण के अनुसार उपचारित करना चाहिए।

रोग एवं कीट	कवकनाशी/कीटनाशी	प्रयोग की दर
टी.एल.बी., बी.एल.एस.बी., एम.एल.बी., पिथियम तना सड़न	1:1 के अनुपात में बाविस्टीन तथा कैप्टान	2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज
बी.एस.एम.डी	अपरान 35 एस.डी.	4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज
दीमक तथा प्ररोह मक्खी (शूट फ्लाई)	इमिडाक्लोरपिड़ या फिप्रोनिल	4 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज

बुवाई की विधिः

पौधों की जड़ों में पर्याप्त नमी बनी रहे और जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए यह उचित है कि फसल को मेंड़ों पर बोया जाये। बीज को उचित दूरी पर लगाना चाहिए। आजकल विभिन्न बीज माप प्रणालियों के प्लान्टर उपलब्ध हैं, किन्तु एन्कलाइंड प्लेट, कपिंग या रोलर टाइप के सीट मीटरिंग प्रणाली सर्वोत्तम पायी गयी है। अतः सम्भव हो तो बुवाई के लिए प्लांटर का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि इससे एक ही बार में बीज व उर्वरकों को मृदा में उचित स्थान पर डालने में मदद मिलती है। चारे वाली फसल की बुआई सीडड्रिल द्वारा करनी चहिए। हाथ से मेंड़ों पर बुआई करते समय पीछे की ओर चलना चाहिए। मक्का की बुवाई पूर्व से पश्चिम दिशा वाली मेंड़ के उत्तरी भाग में की जानी चाहिए। इससे लवण–क्षार की समस्या से कुछ हद तक बचा जा सकता है क्योंकि सूर्य की किरणें सीधी मृदा पर नहीं पड़ती हैं। इससे क्षार सूर्य की किरणों वाली दिशा में ही ज्यादा आते हैं। अच्छी उपज लेने हेतु संस्तुत मक्का की किस्मों का चुनाव करना चाहिए। सामान्य मक्का की दाने हेतु उन्नत किस्में क्षेत्रानुसार निम्नवत हैः

विभिन्न क्षेत्रों के लिए संस्तुत प्रचलित प्रमुख किस्में:

उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र	जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर पूर्वी राज्य	विवेक मक्का हाइब्रिड 45, विवेक मक्का हाइब्रिड 47, विवेक मक्का हाइब्रिड 53, एचएम 13, शालीमार मक्का कंपोजिट 3, केडीएम 438, बायो 9544, बिस्को 97 गोल्ड, बायो 9544, युवराज गोल्ड, बायो 605
उतरी पश्चिम मेंदान	दिल्ली, पंजाब, हरियाणा	पी एम एच 1, पी एम एच 3, सीओ एच(एम) 8, बिस्को 555, पीएमएच 4, केएमएच 3712, पी 3441, एनके –30, एनके 6240, बायो 9682, केडीएमएच – 017, एस 6217, बायो 9544, पी 1864

उतरी पूर्वी मेंदान	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल,	सीओ एच (एम) 7, डीएचएम 117, सीओ एच (एम) 8, सीओ एच (एम) 9, डीएचएम 121, एचएम – 12, पीएमएच 6, आईजी 8237, केएमएच–218 प्लस, केएमएच –3426, एनएमएच 803, केएमएच 3712, बिस्को एक्स 1, एनके – 30, एसएमएच – 3904, पी 3501, डीकेसी 9081, पी 3441, केडीएमएच –017, युवराज गोल्ड, बायो 9544, एनएमएच –713
प्रायद्वीपीय भारत	आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक	डीएचएम 119, सीओ एच 7 (एम), डीएचएम 117, सीओ एच 8 (एम), बायो 9544, सीओ एच 10 (एम), आईजी 8011, आईजी 8237, बिस्को 111, बिस्को एक्स 1, एनके –30, एनके 6240, एसएमएच– 3904, केएमएच –25 के 60, बिस्को 97 गोल्ड, बायो 9544, एनएमएच – 1242, एस 6217, युवराज गोल्ड, सन वामन, बीआईओ 605, एनएमएच –731, एनएमएच – 1242
पश्चिमी मध्य भारत	राजस्थान, छत्तीसगढ, मध्य प्रदेश, गुजरात	डीएचएम 117, पीईएचएम 2, पीएमएच 5, सीओ एच 8 (एम), एस 6217, सीओ एच 9 (एम), डीएचएम 121, विवेक मक्का हाइब्रिड 51, बायो 9544, सीओ एच 10 (एम), हिसेल, केएमएच–3426, एनएमएच – 731, एनएमएच – 803, केएमएच 3712, पी 3441, पी 3502, एनके – 30, बीआईओ– 9682, विवेक मक्का हाइब्रिड 43, पी 3501, एनएमएच –731, एनएमएच–1242

मक्का की अच्छी उपज लेने के लिए समान्य मक्का की उन्नत प्रजातियों के साथ–साथ निम्नवत विशेष प्रकार के मक्का की उन्नत प्रजातियों का शुद्ध एवं प्रमाणित बीज ही बोना चाहिए।

1. क्यूपीएमः एचक्यूपीएम–1 एवं 5, 7, प्रताप क्यूपीएम–1, शक्तिमान–1,3 एवं 4 एवं शक्ति–1 (संकुल)
2. स्वीट कॉर्नः अल्मोड़ा स्वीट कॉर्न, सुगर 75, हाई ब्रिक्स 39, हाई ब्रिक्स 52, मिष्ठी, माधुरी, प्रिया, विन ऑरेंज स्वीट कॉर्न
3. पॉपकॉर्नः डीएमआरएचपी 1402, बिपिसिएच 6, केडीपीसी–2, वी. एल. पॉपकॉर्न, अम्बर, पर्ल एवं जवाहर.
4. बेबी कॉर्नः एच. एम. 4, विवेक संकर 27, प्रकाश एवं वी.एल. बेबी कॉर्न –1
5. चारे के लिएः अफ्रिकन टाल, जे–1006, प्रताप चरी–6

पोषण प्रबन्धनः

मध्य भारत की मृदाओं में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश के अतिरिक्त कुछ सूक्ष्म– तत्वों जैसे– लोहा व जस्ता आदि की कई क्षेत्रों में कमी देखी गई है। अतः मक्का की अधिक उपज के लिए बुवाई से पहले मिट्टी की जाँच करवाना अतिआवश्यक है। तथा बुवाई से 10–15 दिन पूर्व खेत में भलीभाँति सड़ी हुई 10–12 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर मिला देनी चाहिए तथा मिट्टी की जाँच के परिणमों के आधार पर 150 से 180 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60–70 किलोग्राम फास्फोरस, 60–70 किलोग्राम पोटाश तथा 25 किलो ग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग किया जाना चाहिए। फास्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मान्ना तथा एक तिहाई नाइट्रोजन को आधार डोज (बेसल) के रूप में बुवाई के समय देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन को दो हिस्सों में निम्नलिखित विवरण के अनुसार देना चाहिए।

- 50 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में 8 पत्तियाँ आने के समय देना चाहिए।
- 50 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल पुष्पन अवस्था (सिलकिंग) में हो या फूल (टेसलिंग) आने के समय देना चाहिए।

उर्वरकों को बीज से 4–5 से.मी गहरा तथा 4–5 से.मी दूरी पर डालना चाहिए जिससे अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव ना पड़े।

जल प्रबंधनः

मक्का में जल प्रबन्धन मुख्य रूप से बुवाई के मौसम पर निर्भर करता है। क्योंकि भारत में लगभग 80 प्रतिशत मक्का विशेष रूप से वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उगाया जाता है अतः यदि वर्षा ऋतु में मानसूनी वर्षा सामान्य रही तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि मक्का एक

ऐसी फसल है जो न तो सूखा सहन कर सकती और न ही अधिक पानी सहन कर सकती है। अतः खेत में जल निकासी के लिए नालियाँ बुवाई के समय पर ही तैयार कर देनी चाहिये व सही समय पर ही अतिरिक्त पानी को खेत से निकाल देना चाहिए। जब फसल को सिंचाई की आवश्यकता हो, उसी समय सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई बहुत ही ध्यान से करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस सिंचाई में अधिक पानी से छोटे पौधों की बढवार नही होती है। इसलिए पहली सिंचाई में पानी मेंड़ों के ऊपर से नहीं बहना चाहिए। सामान्य रूप से नालियों में रिजेज/क्यारियों के दो तिहाई ऊँचाई तक ही पानी देना लाभदायक रहता है। सिंचाई की दृष्टि से नई पौध, घुटनों तक की ऊँचाई, फूल आने तथा दाने भराव की अवस्थाऐं सबसे संवेदनशील होती हैं अतः इन अवस्थाओं में अगर सिंचाई की सुविधा हो तो सिंचाई अवश्य करना चाहिए।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रणः

खरीफ के मौसम में खरपतवारों की समस्या अधिक होती है, अतः वो फसल से पोषण, जल एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिसके कारण उपज में 40–50 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। मक्का की अच्छी उपज लेने के लिये समय रहते खरपतवारों का नियंत्रण अति–आवश्यक है। आजकल शाकनाशियों का प्रयोग बढ़ने लगा है क्योंकि बरसात के दिनों में निराई–गुड़ाई के लिये समय भी कम मिल पाता है, और निराई–गुड़ाई कई बार करनी पड़ती है। अतः खरपतवारनाशीयों के प्रयोग से वर्षा ऋतु में लाभदायक परिणाम मिलते हैं। शाकनाशी रसायनों में एट्राजीन (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) का खरपतवारों के जन्म से पहले प्रति हेक्टेयर लगभग 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. एट्राजीन की आवश्यकता होती है जिसको लगभग 600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त बाद खरपतवार निकलने से पूर्व छिड़काव करना चाहिए। जिससे एक वर्षीय घास तथा चौड़ीपत्तियों वाले, दोनों ही प्रकार के खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है, लेकिन दूब, मोथा, केना आदि खरपतवारों का नियंत्रण इससे नहीं होता हैं। अतः इनकों खुरपी से निराई करके नियंत्रण किया जा सकता है। एट्राजीन शाकनाशी के प्रयोग की मात्रा भूमि के प्रकार पर निर्भर करती हैं जो हल्की मिट्टियों में कम तथा भारी मिट्टियों में अधिक होती हैं। मृदा सतह पर एट्राजीन के छिड़काव के समय नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। एट्राजीन का छिड़काव करने वाले व्यक्ति को छिड़काव करते समय आगे की बजाय पीछे की तरफ बढ़ना चाहिए ताकि मृदा पर बनी एट्राजिन की परत ज्यों की त्यों बनी रहे। अच्छे वायुसंचार तथा बचे हुए खरपतवारों को जड़ से उखाड़ने के लिए एक या दो निराई करनी चाहिए। निराई करते समय भी व्यक्ति को पीछे की ओर बढ़ना चाहिए ताकि मिट्टी में दवाब न आये तथा वायुसंचार अच्छा बना रहें।

मक्का में निराई गुड़ाई के लिए प्रयाप्त मजदूर उपलब्ध न होने तथा उनकी अधिक लागत होने तथा अधिक वर्षा होने पर फसल में खरपतवार निकालना मुश्किल हो जाता है। अतः इन परिस्तिथियों में मक्का की फसल में 25–30 दिन बाद टेम्बोट्राओन (लौडीस) शाकनाशी का 120 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर सक्रिय तत्त्व की दर से 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव कर चौड़ी एवं संकड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है। अगर खेत में केवल चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हों तो 25–30 दिन बाद 2,4–डी शाकनाशी का 500 ग्राम सक्रिय तत्व को 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

फसल सुरक्षा

कीट प्रबंधनः

तना भेदकः खरीफ की फसल के दौरान लगभग पूरे देश में मक्का तना भेदक (काइलो पार्टेलस) का लारवा मुख्य रूप से हानिकारक होता है। तना भेदक पतंगे पत्तियों पर अंडे देते हैं। इनकी सूंडी गोभ में घुसकर पौधे को नष्ट कर देती हैं। पौधा यदि 20 से 25 दिन तक बच जाए तो तना भेदक के लिए प्रतिरोधक क्षमता प्रबल हो जाती है। अगर तना भेदक का प्रकोप अधिक हो तो इसकी रोकथाम के लिए पौध जमने के 10–12 दिन के पश्चात गोभ में उचित जगह पर कार्बोफ्यूरान डालना चाहिये या पौध जमने के 10–12 दिन के पश्चात प्रति हेक्टेयर 8 ट्राइकोकार्ड (*ट्राइक्रोग्रामा चाइलोनिस*) रिलीज करने से भी इनकी रोकथाम की जा सकती है।

पिंक बोरर (सिसेमिया इन्फेरेंस): यह कीट रबी ऋतु का प्रमुख कीट है यह कीट रात्रिचर है और अंडे पत्तियों

की निचली सतह पर देता है। लार्वा पौधे की निचली सतह से घुसती हैं ओर तने को नष्ट कर देती हैं। इसकी रोकथाम के लिए पौध जमने के 10–12 दिन के पश्चात गोभ में उचित जगह पर कार्बोफ्यूरान 3जी डालना चाहिये या पौध जमने के 10–12 दिन के पश्चात प्रति हेक्टेयर 8 ट्राइकोकार्ड (*ट्राइक्रोग्रामा चाइलोनिस*) रिलीज करने से भी इनकी रोकथाम की जा सकती है।

रोग प्रबंधनः

बैंडेड लीफ एवं शीथ ब्लाइटः नाम के मुताबिक इस रोग में पत्तों व शीथ पर चौड़ाई के रूख में स्लेटी या भूरे रंग की गहरी पट्टियाँ दिखायी देती हैं। उग्र अवस्था में भुट्टे भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। भूमि को छूने वाली 2–3 रोगी पत्तियों को शुरू में ही तोड़ देने से एवं 30 सें 40 दिन की फसल पर 10 ग्राम राइजोलेक्स 50 डब्ल्यू0 पी0 प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से रोग की रोकथाम की जा सकती है तथा स्यूडोमोनास फ्ल्यूरोसेंस 16 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज में मिलाकर बीजोपचार करने से भी रोग की रोकथाम की जा सकती है।

टरसिकम लीफ ब्लाइटः रोगी पौधो की निचली पत्तियों पर लंबे चपटे स्लेटी या भूरे रंग के धब्बे दिखायी देते हैं जो धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढते हैं। यह बीमारी पहाड़ी तथा प्रायद्बीपीय भारत में खरीफ के मौसम में ज्यादा फैलती है। इसके उपचार के लिए 8–10 दिन के अन्तराल पर एक लीटर पानी में 2.5 से 4.0 ग्राम मेंनेब / जिनेब मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। जहाँ पर इस रोग का प्रकोप अधिक हो उन क्षेत्रों में रोग प्रतिरोधी किस्में उगानी चाहिए।

मेंडिस लीफ ब्लाइटः पत्तियों की शिराओं के बीच में पीले भूरे अंडाकार धब्बे बन जाते हैं जो बाद में लंबे हो कर चौकोर हो जाते हैं। इनसे पत्तियां जली हुई दिखाई देती हैं। रोग के लक्षण दिखते ही 8–10 दिन के अन्तराल पर एक लीटर पानी में 2.4 से 4.0 ग्राम डाइथेन एम–45 / जिनेब मिलाकर छिड़काव करें। जहाँ पर इस रोग का प्रकोप अधिक हो उन क्षेत्रों में रोग प्रतिरोधी किस्में उगानी चाहिए।

पोलीसोरा रस्टः मांझर बनते समय नमी अधिक होने पर पत्तियों की दोनों सतहों पर गोल, लंबे, सुनहरे या गहरे भूरे रंग का पाउडर बिखरा दिखायी देता है जो बाद में भूरे काले रंग का हो जाता है। रोग के प्रथम लक्षण दिखते ही 15 दिन के अन्तराल पर एक लीटर पानी में 2.0 से 2.5 ग्राम डाइथेन एम–45 मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

मक्के के पुष्पन के पश्चात् वृन्त सड़न (पी.एफ.एस. आर.) : यह रोग समय पर बुवाई (10 से 20 जुलाई के मध्य में) करने से उत्तरी भारतीय क्षेत्रों में कम फैलता है। अच्छे जल निकास वाली भूमि में पौधों की संख्या प्रति हैक्टेयर पचास हजार से कम रखने पर भी यह रोग कम फैलता है। फूल आते समय फसल को पर्याप्त मात्रा में जल की आपूर्ति होने से तथा विशेष रूप से पोटाश के स्तर को 80 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक बढ़ाकर मृदा उर्वरता के संतुलन बनाये रखने से रोग को कम करने में मदद मिलती है। रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

डाउनी मिल्ड्यू (मृदुल रोमिल आसिता): बारिश के पहले बुवाई एवं रोग प्रतिरोधक किस्में उगाने से भी रोग की रोकथाम की जा सकती है। एप्रोन 35 एस.डी. का 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें तथा सिस्टेमिक फफूंदनाशी जैसे कि मेंटालैक्सिल, रोडोमिल 25 डब्ल्यू.पी. का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने से पहले करने पर रोग का प्रकोप कम किया जा सकता है।

अन्तः फसलः–

अन्तः फसल एक तरह का बीमा है, जो किसान को जैविक व अजैविक आपदाओं से बचाता है मक्का के साथ कम अवधि में पकने वाली सब्जियाँ एवं फूल आदि फसलें ली जा सकती हैं।

1. अन्तः फसली खेती में मुख्य फसल की निर्धारित उर्वरक की मात्रा के अलावा अन्तः फसल की निर्धारित उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।
2. मक्का तथा अन्तः फसल की दो–दो या मक्का की दो एवम् अन्तः फसल की एक लाइन बोनी चाहिए।
3. खरपतवारों का नियन्त्रण अन्तः फसल में निराई गुड़ाई से करना चाहिए।

4. शाकनाशी रसायनों के इस्तेमाल से अन्तः फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इसमें अन्तः फसलें उगाने से एक फसल का दूसरी फसल पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि कुछ अन्तः फसलें मृदा उर्वरता को बढ़ाती हैं तथा ठंडे मौसम में होने वाले नुकसान से मक्का को दक्षिण दिशा तथा अन्तः फसल को उत्तर की तरफ बोते हैं तो यह उत्तरी ठंडी हवा से मक्का का बचाव करती है। मक्का के साथ मूंग, उर्द, लोबिया, अरहर, मूंगफली की अन्तवर्ती खेती आसानी से की जा सकती है। सामान्यतः कम अवधि वाली फसल को मक्का के साथ अन्तः फसली के रूप में उगाने को प्राथमिकता देते हैं। मक्का के लिए निर्धारित उर्वरक की मात्रा के अतिरिक्त अन्तः फसल की निर्धारित उर्वरक का भी प्रयोग करना चाहिए। किसान के लिए अन्तः फसल के कई विकल्प हैं, लेकिन दृष्टिकोण से ठंडी के मौसम में मटर और आलू की खेती बड़े पैमाने पर अन्तः फसल के रूप में की जा सकती है।

सामान्य मक्का की कटाई एवं उपजः जब भुट्टों को ढकने वाली पत्तियां पीली पड़ने लगें व दानों में 25—30 प्रतिशत नमी हो तब मक्का की कटाई करनी चाहिए। अच्छा होगा अगर भुट्टों को शेलिंग (दाना निकालना) के पहले धूप में सुखाया जाए तथा दानों में 13—14 प्रतिशत नमी होने पर शेलिंग की जाए। शेलिंग ऊर्जा चालित मेंज शेलर या हाथ से करनी चाहिए।उचित भण्डारण के लिये दानों को सुखाने की प्रक्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक कि उनमें नमी का अंश लगभग 8—10 प्रतिशत न हो जाये और इन्हें वायुप्रवाहित जूट के थैलों में रखना चाहिए। सामान्य मक्का की उपज की इसके किस्मों की क्षमता (जीनोटाइप) और जलवायुवीय दशाओं पर निर्भर करती है। अच्छी फसल की स्थिति में औसतन 45—50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दाना प्राप्त कीया जा सकता है। इसके अलावा 120—150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर सूखा चारा भी मिलता है जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

आर्थिक लाभः एक हेक्टेयर खेत में सामान्य मक्का की खेती करने में 22,000/₹ (यानि 8,900 ₹ प्रति एकड़) खर्च आता है और आमदनी लगभग 60,000—65,000 ₹ (यानि 24,000—26,000 ₹ प्रति एकड़) होता है। अतः किसान भाइयों को लगभग 40,000 ₹ प्रति हेक्टेयर (यानि 16,000 ₹ प्रति एकड़) शुद्ध आमदनी (शुद्ध लाभ) एक ऋतु में प्राप्त होता है। अन्तः फसल से बोनस के रूप में इन्टरक्रॉप प्राप्त होता है, जिससे शुद्ध लाभ में और बढ़ोतरी होता है।

उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का (क्यू पी एम): देश में खाद्य और पोषण की सुरक्षा को देखते हुये मक्का की गुणवत्ता का मुख्य स्थान है चूँकि 85 प्रतिशत मक्का का उपयोग खाने एवं चारे के रूप में होता है। इस संदर्भ में ओपेक—2 एवं फ्लोरी—2 म्यूटैन्ट की खोज ने मक्का की प्रोटीन गुणवत्ता में सुधार करने के नये आयाम खोले जिसके फलस्वरूप उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का का विकास हुआ। उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का जो कि पोषकता की दृष्टि से सामान्य मक्का से अच्छी है, इसका महत्व न केवल खाद्य सुरक्षा एवं पोषकता की दृष्टि से बल्कि कुकुट पालन सूअर पालन एवं पशुपालन के क्षेत्र में भी नये आयाम खोले हैं। उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का में संतुलित मात्रा में अमीनो अम्ल होते हैं जिसमें सामान्य मक्का की तुलना में लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन अधिक होते है तथा ल्यूसिन एवं आइसोल्यूसिन तत्व कम पाये जाते हैं। इन सभी आवश्यक अमीनों अम्लों का संतुलित अनुपात ही उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का में प्रोटीन का जैविक मूल्य बढाता है। उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का में प्रोटीन का जैविक मूल्य सामान्य मक्का से दुगना होता है जोकि दूध के प्रोटीन के आस— पास होता है। दूध और उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का के प्रोटीनों का जैविक मूल्य क्रमशः 60 प्रतिशत एवं 70 प्रतिशत होता है जबकि सामान्य मक्का में यह 50 प्रतिशत से भी कम होता है। भारतवर्ष में इस तरह के उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का की संकर किस्में विकसित एवं जारी की जा चुकी है जिनकी खेती देशभर में विभिन्न कृषि जलवायु दशाओं में की जा सकती है। उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का की उत्पादन तकनीकी बिल्कुल सामान्य दाने वाली मक्का की तरह ही होती है सिवाय इसके कि इसमें प्रथक्करण दूरी का ध्यान रखना होता है जिससे उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का की शुद्धता बनी रहे, इसलिए उत्तम प्रोटीन युक्त मक्का को सामान्य मक्का से 400—500 मीटर की दूरी पर उगाना चाहिए।

विशेष प्रकार के मक्काः स्वीट कॉर्न, पॉप कॉर्न एवं बेबी कॉर्न की उन्नत खेती

विशेष प्रकार के मक्का की खेती के लिए उपरोक्त वर्णित कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

स्वीट कॉर्नः स्वीट कॉर्न की किस्में सामान्य मक्का से भिन्न होता है। इसकी खेती सामान्य मक्का की तरह होती है परन्तु बोआई के वक्त मिट्टी का तापमान, सुपर स्वीट कॉर्न की किस्मों के लिए 16^0 सें.ग्रे. तथा स्टैन्डर्ड स्वीट कॉर्न की किस्मों के लिए 10^0 सें.ग्रे. से कम नहीं होना चाहिए।

मीठी मक्का (स्वीट कॉर्न) की तुड़ाई कच्चे भुट्टे हेतु परागण के लगभग 18 से 22 दिन के बाद शाम के समय करनी चाहिए। तुड़ाई के समय भुट्टे में लगभग 70 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। इन भुट्टों को अच्छी तरह पैकिंग करके ठंडे स्थान (कोल्ड स्टोर, फ्रीज इत्यादि) पर भण्डारित करना चाहिए। मीठी मक्का का दाना सामान्य मक्का से छोटा होता है। इसे कच्चा या उबालकर खाया जा सकता है। यह सब्जी एवं अनेक तरह के पकवान जैसे स्वीट कॉर्न केक, स्वीट कॉर्न क्रीम स्टाइल आदि बनाने में भी प्रयुक्त होता है। हरा भुट्टा तोड़ने के तुरंत बाद पौधे को काटकर हरे चारे के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। अधिक आय प्राप्त करने हेतु इसको गैंदा, ग्लैडियोलस, मसाले, मटर आदि के साथ रबी अर्थात् सर्दी के मौसम में अन्तः फसलीकरण (इन्टर क्रॉपिंग) भी किया जा सकता है।

कटाई एवं उपजः बीज के अंकुरण के लगभग 45 दिनों के बाद नर मंजरी आती है और इसके 2–3 दिनों के बाद मादा मंजरी (सिल्क) आती है। खरीफ के मौसम में परागण (पोलिनेशन) के 18–22 दिनों के बाद मीठी मक्का के भुट्टे तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं सर्दी के मौसम में परागण के 25–30 दिनों के बाद भुट्टों की तुड़ाई की जा सकती है। इस अवस्था (तुड़ाई की अवस्था) की पहचान भुट्टे के ऊपरी भाग यानि सिल्क के सूखने से की जा सकती है या इस अवस्था में भुट्टे को नाखुन से दबाने से दूध जैसा तरल पदार्थ निकलने लगता है। भुट्टे की तुड़ाई सुबह या शाम में करनी चाहिए। हरे भुट्टे को तुड़ाई के ठीक बाद बाजार (मंडी) या प्रोसेसिंग यूनिट या कोल्ड स्टोरेज में पहुँचा देना चाहिए। हरे भुट्टे के तोड़ने के बाद बचे हुए हरे पौधे को चारे के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। अच्छी फसल की स्थिति में औसतन 110–130 क्विंटल हरे भुट्टे एवं 250–400 क्विंटल हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

कटाई उपरांत प्रबंधनः भुट्टे को तुड़ाई के ठीक बाद संसाधन इकाई (प्रोसेसिंग युनिट) या मंडी में पहुंचा देना चाहिए। भुट्टे को ढेर लगाकर नहीं रखना चाहिए, बल्कि इसे लकड़ी के डिब्बे (वुडेन क्रेट्स), कार्टून आदि में रखना चाहिए। कमरे के तापमान पर (रूम टेम्परेचर) चौबीस (24) घंटे के अंदर स्वीट कॉर्न के भुट्टे का 50 प्रतिशत या उससे अधिक सुगर दूसरे रूप में बदल जाता है। अतः इन्हें हाइड्रोकुलिंग एवं पैकेजिंग करके शीत गृह (कोल्ड स्टोरेज) में रखा जाता है। भुट्टे को एक जगह से दूसरे जगह ले जाने में भी बर्फ की मदद से ठंडा करके रखना चाहिए या रेफ्रिजिरेटेड ट्रक का प्रयोग करना चाहिए। भुट्टे को प्लास्टिक के ट्रे में रखकर ले जाना चाहिए।

आर्थिक लाभः एक हेक्टेयर खेत में स्वीट कॉर्न की खेती करने में ₹ 35–45,000 / (यानि ₹ 14,000–18,000 / प्रति एकड़) खर्च आता है और आमदनी लगभग ₹ 80,000–1,00,000 / (यानि ₹ 32,000–41,000 / प्रति एकड़) होता है। अतः किसान भाइयों को लगभग ₹ 55,000 / प्रति हेक्टेयर (यानि ₹ 20,000–22,000 / प्रति एकड़) शुद्ध आमदनी (शुद्ध लाभ) एक ॠतु में प्राप्त होता है। इन्टरक्रॉपिंग से बोनस के रूप में इन्टरक्रॉप प्राप्त होता है, जिससे शुद्व लाभ में और बढ़ोतरी होता है।

पॉप कॉर्नः पॉप कॉर्न यजिया मेंज एल. एर्वटा. एक विशेष प्रकार की फ्लिन्ट मक्का होती है, जिसके बीज का आकार छोटा और भुर्णपोश सख्त होता है। यह दुनिया भर में सामान्यतः स्नैक्स के रूप में उपयोग होता है। हल्का एवं कुरकुरा होने की वजह से खासतौर पर शहरों में अधिक पसंद किया जाता है। इसका बना आटा भी कई व्यंजनों को बनाने के काम में आता है। इसे हवा की नमी से बचाने हेतु ताजा ही प्रयोग में लाया जाता हैं। यह एक पॉपकॉर्न का दाना बहुत छोटा एवं गोल आकार का होता है। इसे जब लगभग 1700 से. तापमान तक गरम करते हैं तो इसके दाने फूल कर फट जाते हैं और दाना पलट कर अन्दर का बाहर हो जाता है। पॉपकॉर्न की गुणवत्ता इसके फूटने

के घनत्व और कम से कम बिना फूटे हुए पॉपकॉर्न संख्या पर निर्भर करती है।

पॉप कॉर्न की वाणिज्यिक खेती सामान्य मक्का की तुलना में काफी अलग है। पॉपकॉर्न अलगाव में उगाया जाना चाहिए क्योंकि अगर यह सामान्य मक्का के निकट हो जाता है तो वहाँ पॉपिंग की विशेषताओं पर जीनिया प्रभाव पड़ता है। देश की आवश्यकताओं और पॉपकॉर्न के लिए क्षेत्र की तैयारी सामान्य मक्का की तरह की जाती है। यह रेतीले चिकनी बलुई उपजाऊ मिट्टी में सर्वोत्तम होती है. बुवाई का उचित समय आमतौर पर उत्तर भारत में 25 जून–20 जुलाई तक है। बढ़िया फसल हेतु 80:60:40 किलोग्राम/हेक्टेयर नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश उर्वरक चाहिए। नत्रजन मांग की 3 बराबर भागों में विभाजन करके बुवाई, उगने के 25 और 45 दिन बाद डालना चाहिए। कीट और रोग प्रबंधन, सिंचाई आदि की उत्पादन प्रौद्योगिकियां सामान्य मक्का के अनुसार हैं।

बेबी कॉर्न: बेबी कॉर्न को शिशु मक्का भी कहते हैं। यह वह अनिषेचित मक्का का भुट्टा है जो सिल्क की 2–3 से. मी. लम्बाई वाली अवस्था या सिल्क आने के 1 से 3 दिन के अन्दर पौधे से तोड़ लिया जाता है। अच्छे बेबी कॉर्न की लम्बाई 6–11 से.मी. और रंग हल्का पीला होना चाहिए। यह फसल खरीफ में लगभग 50–55 दिनों में तैयार हो जाती है। एक वर्ष में बेबी कॉर्न की 3–4 फसलें आसानी से ली जा सकती हैं। इसकी खेती से पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारा भी मिल जाता है। बेबी कॉर्न की निश्चित विपणन (मारकेटिंग) और डिब्बाबंदी (कैनिंग) से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यह विभिन्न व्यंजनों के रूप में उपयोग में लाया जाता है। बेबी कॉर्न को उत्तरी भारत में फरवरी से नवम्बर के बीच बोया जा सकता है। बेबी कॉर्न की उच्च उत्पादकता के लिए निम्नलिखित कृषि क्रियाओं को अपनाना चाहिए:

उत्पादन तकनीकी: बेबी कॉर्न की उत्पादन तकनीकी कुछ विभिन्नताओं के अलावा सामान्य मक्का की तरह ही है। ये विभिन्नतायें निम्नलिखित हैं।

1. अग्र परिपक्वता (जल्दी तैयार होने) वाली एकल क्रास संकर मक्का की प्राथमिकता।
2. मध्यम ऊँचाई तथा झुकाव (लाजिंग) प्रतिरोधी संकर किस्में।
3. उर्वरक की अधिक खुराक के प्रति सकारात्मकता वाली संकर किस्में।
4. खड़ी पत्तियों वाली संकर किस्में।
5. पौधों की अधिक संख्या।
6. अधिक पौधे होने के कारण अधिक उर्वरक का प्रयोग।
7. झण्डों को तोड़ना (डिटैसलिंग)।
8. सिल्क आने के बाद एवं 24 घंटों के अन्दर भुट्टों की तुड़ाई कर लेनी चाहिए।

झण्डों को तोड़ना (डिटैसलिंग) झंडा बाहर दिखाई देते ही निकाल देना चाहिए। इसे (झंडे को) पशुओं को खिलाया जा सकता है ।

तुडाई: बेबी कॉर्न की तुड़ाई के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

- बेबी कॉर्न के भुट्टों को 3–4 से. मी. सिल्क आने पर तोड़ लेना चाहिए।
- भुट्टा तोड़ते समय उसके (भुट्टे के) ऊपर की पत्तियाँ नहीं हटानी चाहिए। पत्तियाँ हटने से ये जल्दी खराब हो जाती है।
- खरीफ में प्रतिदिन सिल्क आने के बाद एवं 24 घंटे के पहले भुट्टे की तुड़ाई कर लेनी चाहिए।

उपज:

बेबी कॉर्न की उपज इसके किस्मों की क्षमता (जीनोटाइप) और जलवायुवीय दशाओं पर निर्भर करती है। अच्छी फसल की स्थिति में औसतन 55–114 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बिना छिली हुई या 11–19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर छिली हुई बेबी कॉर्न प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा 150–400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हरा चारा भी मिलता है जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।

कटाई उपरान्त प्रबंधन:

- बेबी कॉर्न का छिलका तुड़ाई के बाद उतार लेना चाहिए। यह कार्य छायादार एवं हवादार जगहों पर करना चाहिए।

- भंडारण ठंडी जगहों पर करना चाहिए।
- छिलका उतरे हुए बेबी कॉर्न को ढेर लगाकर नहीं रखना चाहिए, बल्कि प्लास्टिक की टोकरी, थैले या अन्य कोई कन्टेनर में रखना चाहिए।
- बेबी कॉर्न को तुरंत मंडी या प्रसंस्करण इकाई (प्रोसेसिंग प्लान्ट) में पहुँचा देना चाहिए।

बेबी कार्न की खेती से लाभः

1. फसल विविधिकरण।
2. किसानों, ग्रामीण महिलाओं एवं नवयुवकों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना।
3. कम समय में मुद्रा अर्जित करना।
4. निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा में वृद्धि तथा व्यापार में बढ़ावा।
5. पशुपालन को बढ़ावा देना।
6. मानव आहार प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देना।
7. अन्तः सस्य (इन्टरक्रापिंग) द्वारा अधिक आय अर्जित करना।

आर्थिक लाभः मध्य भारत की जलवायु की दशाओं को देखते हुए किसान एक वर्ष में बेबी कॉर्न की तीन से चार फसलें ले सकते हैं। बेबी कॉर्न की खेती का आर्थिक विश्लेषण इस प्रकार हैः

खेती का लागत मूल्यः ₹ 25,000 / हेक्टेयर

उपजः 13 क्विंटल / ₹ 50 प्रति किलोग्राम हरा चारा : 150 क्विंटल / ₹ 75 प्रति क्विंटल

कुल प्राप्तिः ₹ 76,250 / हेक्टेयर शुद्ध प्राप्तिः ₹ 51,250 / हेक्टेयर

पौष्टिक महत्व एवं उपयोगः बेबी कॉर्न एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार है तथा पत्तों से लिपटी रहने के कारण कीटनाशक दवाओं के प्रभाव से मुक्त होती है। इसमें फॉसफोरस की मात्रा भी भरपूर होती है तथा इसके अतिरिक्त इसमें कार्बोहाइड्रेटस, प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा व विटामिन भी उपलब्ध होते हैं। यह आसानी से पचाया जा सकता है। बेबी कॉर्न को कच्चा या पकाकर भी खाया जा सकता है। इससे अनेक प्रकार के व्यंजन भी तैयार किए जाते हैं जैसे सूप, सलाद, सब्जियाँ, कोफता, पकौड़ा, भुजिया, रायता, खीर, लड्डू, हलवा, अचार, कैन्डी, मुरब्बा, बर्फी, जैम इत्यादि।

कम अवधि में परिपक्व होने वाली सरसों की प्रजातियां एवं उनकी वैज्ञानिक खेती

नवीन सिंह, राजेन्द्र सिंह, नविन्दर सैनी, सुजाता वासुदेव, यशपाल एवं देवेन्द्र कुमार यादव
आनुवंशिकी संभाग, भा. कृ. अ. प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

सरसों–राई भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख तिलहन फसल है एवं उत्पादन की दृष्टि से सोयाबीन के बाद दूसरे स्थान पर आती है। यद्यपि यह फसल देश के अधिकतर प्रदेशों में किसी न किसी रूप में उगाई जाती है तथापि भारत के पाँच राज्यों, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल में देश के कुल राई–सरसों के क्षेत्रफल का 82 एवं उत्पादन का 85.67 प्रतिशत योगदान है। भारत में सरसों कुल की छः फसलों यथाः भारतीय सरसों, गोभी सरसों, करण राई, तोरिया, पीली सरसों एवं काली या भूरी सरसों की खेती की जाती है। भारत में उगाई जाने वाली राया सरसों के कुल क्षेत्रफल का लगभग 80 प्रतिशत भारतीय सरसों ही है। क्षेत्रफल के लिहाज से कुल क्षेत्रफल का लगभग 45 प्रतिशत भाग राजस्थान में आता है। भारतीय सरसों उपरोक्त सभी फसलों (करण राई को छोड़कर) में अधिक सूखा, उच्च तापक्रम, पाला एवं लवणीयता सहनशील है। पूर्व में तोरिया अधिक भूभाग पर उगाई जाती थी एवं अभी भी देश के उत्तर–पूर्वी भाग में खरीफ एवं रबी के मध्य समय में एक नगदी फसल के रूप में उगाई जाती है। तोरिया की फसल लगभग 100 दिन में परिपक्व हो जाती है, लेकिन पैदावार में भारतीय सरसों की तुलना में कम है। इस फसल में कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप भी ज्यादा होता है। वर्ष 1998 से पूर्व भारतीय सरसों की 125–150 दिन की अवधि में पकने वाली प्रजातियाँ ही उपलब्ध थी जो की सितंबर के महीने में बुआई के लिए उपयुक्त नहीं थी तदुपरान्त विभिन्न अनुसंधान संस्थानों के सतत प्रयासों द्वारा भारतीय सरसों की उन्नत प्रजातियों का विकास किया गया है एवं क्षेत्रवार तथा बोये जाने के समयानुसार प्रजातियों का विमोचन किया गया है। अगेती एवं पछेती बुवाई के किए विकसित प्रजातियों में, क्रमशः बुवाई के समय एवं दाना बनने के समय, उच्च तापमान प्रतिरोधकता आवश्यक थी। इस लिए इन प्रजातियों को उच्च तापमान प्रतिरोधक बनाया गया। भारतीय सरसों की इन प्रजातियों का उत्पादन तोरिया से लगभग 40 प्रतिशत अधिक है। किन्तु अभी भी इन प्रजातियों की क्षमता के अनुरूप प्रति इकाई क्षेत्र से उचित पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकी है जिसके मुख्य कारण निम्न हैं।

1. अधिकांशतः अभी भी कम अवधि में परिपक्व भारतीय सरसों की प्रजातियों का प्रचलन में न होना एवं तोरिया का बोया जाना।
2. क्षेत्र विशेष के लिए विकसित एवं विमोचित प्रजातियों का संस्तुत क्षेत्रों में नहीं बोया जाना।
3. कम अवधि में परिपक्व होने वाली उन्नत प्रजातियों का उचित समय पर बुआई न होना।
4. फसल चक्र अनुकूल विकसित प्रजातियों का न बोया जाना।
5. उच्च गुणवत्ता वाले बीज की उपलब्धता न होना।
6. समय से रोग, कीट एवं खरपतवार का नियंत्रण न होना।
7. सिंचाई की उचित सुविधा या सिंचाई जल की गुणवत्ता ठीक न होना।

उपरोक्त कारणों में से कुछ को तो केवल प्रजातियों के सही चयन एवं उनका अनुमोदित क्षेत्रों में बुवाई द्वारा ही दूर किया जा सकता है, जो कि उत्पादन बढ़ाने में मील का पत्थर सिद्ध होगा। इस तथ्य को मद्दे–नजर रखते हुए इस लेख में प्रजातियों के सही चयन के लिए राह दिखाने कि कोशिश की गई है। अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना द्वारा अनुमोदित कम समय में पकने वाली अगेती एवं पछेती बुवाई हेतु विकसित उन्नत प्रजातियों का विवरण निम्नवत हैं।

1. अगेती बुवाई के लिए प्रजातियाँः

इन प्रजातियों की बुआई सितम्बर के महीने में की जाती है। इनकी परिपक्वता अवधि 100 से 120 दिन होती है। दिसंबर के अन्तिम सप्ताह से जनवरी के दूसरे सप्ताह तक इनकी कटाई हो जाती है। कटाई के उपरांत किसान अपनी सुविधानुसार खेत में पछेता गेहुँ, प्याज, लहसुन, अगेता गन्ना अथवा अन्य कोई भी अगेती सब्जी उगा सकते हैं

प्रजाति	द्वारा विकसित	परिपक्वता अवधि (दिन)	तेल की मात्रा (%)	औसत पैदावार (कि.ग्रा./है.)	संस्तुत क्षेत्र	मुख्य विशेषताएँ
पूसा अग्रणी	भा.कृ.अ.स.,न. दिल्ली	77–110	39–40	1320	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान एवं पश्चिमी उ. प्र.	सितंबर में अगेती बुआई हेतु उपयुक्त।
पूसा महक (जे डी–6)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	81–114	39–44	1049	उड़ीसा, प.ब., बिहार, झारखंड, छतीसगढ़ एवं असम	वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए अगेती फसल हेतु संस्तुत ।
पूसा तारक (ई जे 12–13)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	100–120	38–42	1852–1996	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र एवं दिल्ली	सितंबर में अगेती बुआई हेतु उपयुक्त।
पूसा सरसों–25 (एन पी जे–112)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	94–120	36–41	1324–1654	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब, राजस्थान एवं पश्चिमी उ. प्र.	सिंचित क्षेत्रों में अगेती बुआई हेतु उपयुक्त, पौध अवस्था में उच्च तापमान सहनशील।
पूसा सरसों–27 (ई जे–17)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	108–135	40–45	1437–1659	म. प्र., उ. प्र., उत्तराखंड एवं राजस्थान	सितबर में अगेती बुआई तथा सिंचित क्षेत्रों हेतु उपयुक्त, अंकुरण एवं पकते समय उच्च तापमान सहनशील
पूसा सरसों–28 (एन पी जे–124)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	97–131	40–42	1912–2098	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू एवं राजस्थान का कुछ भाग	सितबर में अगेती बुआई तथा सिंचित क्षेत्रों हेतु उपयुक्त, अंकुरण के समय उच्च तापमान, चूर्णिल आसिता रोग तथा 12कै/उ लवणता तक सहनशील
राज विजय मस्टर्ड 1	रा.वि.रा.सि.कृ. वि. वि., मुरैना	98–121	40–43	1704	उ. प्र., म. प्र. एवं राजस्थान का कुछ भाग	सितंबर में अगेती बुआई हेतु उपयुक्त।
जी एम 3 (गुजरात मस्टर्ड 3)	सरदारकृषिनगर दंतिवाड़ा कृ.वि. वि., सरदारक शिनगर	107	38	2175	गुजरात	अगेती बुआई हेतु
जी डी एम 4 (गुजरात दांतिवाड़ा मस्टर्ड 4)	सरदारकृषिनगर दंतिवाड़ा कृ.वि. वि., सरदारक शिनगर	112	39	2417	गुजरात	

उपरोक्त प्रजातियों की बुआई सितंबर के प्रथम पखवाड़े में संरक्षित नमी में की जाती है तथा अक्तूबर के माह में वर्षा होने की संभावना रहती है, अतः एक ही सिंचाई पर्याप्त होती है नवंबर–दिसंबर के महीनों में मौसम बीमारियों एवं कीड़ों के लिए उपयुक्त नहीं होता है अतः अगेती फसल में तोरिया के मुकाबले पैदावार अधिक होती है। इस कारण किसानों के लिए लाभ के अवसर ज्यादा होते हैं।

2. पछेती बुवाई हेतु प्रजातियाँः

जिन क्षेत्रों में धान एवं खरीफ की दूसरी फसलों की कटाई के बाद नवम्बर के महीने में सरसों की बुआई की जाती है, वहाँ सर्दी के मौसम अनुसार इन प्रजातियाँ की परिपक्वता अवधि 110–125 दिन होती है। पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त इन प्रजातियों में दाना बनने के समय उच्च तापमान प्रतिरोधकता है एवं इनमें तेल की मात्रा भी सामान्य रहती है। इन प्रजातियों की बुआई से सीमांत किसानो की आय में वृद्धि की जा सकती है।

प्रजाति	द्वारा विकसित	परिपक्वता अवधि (दिन)	तेल की मात्रा (%)	औसत पैदावार (कि.ग्रा./है.)	संस्तुत क्षेत्र	मुख्य विशेषताएँ
सी एस–56 (सी एस–234–2)	के.ल.अ.स., करनाल	113–147	35–39	1170–1423	म. प्र., उ. प्र., उत्तराखंड एवं राजस्थान का पूर्वी भाग	मोटा दाना, लवणीयता सहनशील एवं पछेती बुआई हेतु उपयुक्त
एन आर सी एच बी–101	राई–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर	105–135	35–42	1382–1491	म. प्र., उ. प्र., एवं राजस्थान	सिंचित क्षेत्रों में पछेती बुआई के लिये उपयुक्त
पूसा सरसों–26 (एन.पी. जे–113)	भा.कृ.अ.स., न. दिल्ली	115–137	30–41	1481–1895	दिल्ली, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब एवं राजस्थान	नवंबर में पछेती बुआई तथा सिंचित क्षेत्रों हेतु उपयुक्त, पकते समय उच्च तापक्रम सहनशील
आशीर्वाद	च. शे. आ. कृ. वि. वि., कानपुर	125–130	37–41	1437–1684	म. प्र., उ. प्र., उत्तराखंड एवं राजस्थान का कुछ भाग	

पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त प्रजातियों में चेंपा, माहु एवं सफेद रतुआ की मुख्य समस्याएँ आती हैं अतः इनके निवारण के लिए समय रहते संस्तुत उपाय अपनाने चाहिए। राया की फसल नमी की कमी के प्रति, फूल आने एवं दाना भरने की अवस्थाओं पर संवेदनशील होती है अतः इन दोनों अवस्थाओं पर सिंचाई कर देनी चाहिये।

उत्पादन प्रौद्योगिकी

बुआई का समय : अगेती–सितंबर एवं पछेती–नवम्बर

बीज की मात्रा : 3.5–4.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर

बीज उपचार : सफेद रोली से बचाव के लिए एपरान 35 एस. डी 6 ग्रा. या बाविस्टीन 2 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचार करें।

उर्वरक : मृदा परीक्षण कराके मृदा स्वास्थ्य कार्ड की संस्तुति के अनुसार उर्वरक की मात्रा दें। सामान्यतः उर्वरकों की मात्रा निम्नवत हैं:

नत्रजन=60–80 किग्रा./हेक्टेयर

फास्फोरस=40 किग्रा./हेक्टेयर

पोटाश= 40 किग्रा./हेक्टेयर

गंधक= 40 किग्रा./हेक्टेयर

अंतरालः पंक्ति से पंक्ति 30 सेमी. (पौधे से पौधे 10–15

सेमी.) बुआई की गहराई 1.5–2.0 सेमी.।

छंटाई : बुआई के 15–20 दिन बाद या प्रथम सिंचाई से पूर्व छंटाई कर पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. कर दें।

सिंचाई: दो से तीन सिंचाई आवश्यकता अनुसार खरपतवार **नियंत्रण** : एक से दो निराई–गुड़ाई अवश्य करें।

पौध संरक्षण

सफेद रोली (White rust) रोग: बीज उपचार के अलावा बुआई से 50–60 दिन बाद या बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही फंफूदनाशक दवा रिडोमिल एम जेड 72 डब्लू. पी. का 2 ग्रा./लीटर पानी की दर से 500–800 लीटर पानी/हैक्टर की दर से छिड़काव करें, यदि जरूरत हो तो 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

झुलसा रोग: रोग के लक्षण दिखने पर केप्टाफाल (फोलटाफ)/मेंकोजेब/जीनेब/कापर आक्सीक्लोराइड 2 ग्रा./लीटर पानी के हिसाब से 500–800 लीटर पानी प्रति हैक्टर की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

छाछिया रोग: कैराथियान एल. सी. 200 मिली. या गंधक चूर्ण 20 किग्रा. या घुलनशील गंधक 2.5 किग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

बगराड़ा, टिड्डा व पत्ती काटने वाले कीड़े: तीन पत्तों की अवस्था में 5 प्रतिशत मेंलाथियान 25 किग्रा./हैक्टर की दर से बुरकाव करें।

बगराड़ा एवं आरा मक्खी: डाइ मेंथोएट 30 ई.सी./मिथाइल डिमेंटोन 25 ई.सी. क्यूनलफास 25 ई. सी./थायामिडान 25 ई.सी. 1000 मिली. फास्फोमिडान 85 डब्लू. एस.सी. 250 मिली./मेंलाथीयान 50 ई.सी. 1250 मिली. प्रति हैक्टर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सरसों का चेंपा या एफिड: यदि 10 प्रतिशत पौधों में प्रति पौधा 20–30 एफिड दिखाई दें तो निम्नलिखित में से किसी भी एक दवा का छिड़काव करें:

- आक्सीड़ेमिटोन मीथाईल 25 ई सी 1000 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हैक्टर
- क्यूनलफास 25 ई. सी. 1000 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर
- क्लोरोपाइरीफोस 20 ई. सी. 600 मिली. 500 लीटर पानी प्रति हैक्टर कम अवधि में परिपक्व होने वाली सरसों–राई की अच्छी फसल लेने हेतु ध्यान में रखने वाली बातें :
- बुआई के समय खेत में उचित नमी होनी चाहिए
- क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत प्रजाति ही उगाएँ
- मृदा परीक्षण की संस्तुति के आधार पर उर्वरक का प्रयोग करें
- वर्षा–आधारित फसल में उर्वरक की मात्रा आधी कर दें
- उर्वरक को बीज के साथ मिलाकर नहीं डालना चाहिए ऐसा करने से अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है
- कीटनाशक धूल का बुरकाव सुबह के समय जब औंस पड़ी हो तब करें
- पौधौं की उचित दूरी बनाए रखने के लिए, पौधों की छंटाई बुआई के 20 से 25 दिन बाद प्रथम सिंचाई से पहले ही कर दें
- पकने के बाद यदि फसल खेत में ज्यादा दिन तक खड़ी रहे तो झड़ने का डर रहता है अतः फसल की समय रहते ही कटाई कर लेनी चाहिए
- विश्वसनीय स्रोत से बीज खरीदें
- खरीद की रसीद लें एवं इसे संभाल कर रखें

अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक बातें:

- अगेती बिजाई से समय पर बुवाई के मुकाबले बीज की मात्रा थोडी अधिक रखें।
- उचित समय पर पौधों की छटाई अवश्य करें।
- बहुफसलीय चक्र में राया/सरसों की कम अवधि में पकने वाली किस्मों का ही प्रयोग करे।
- यूरिया की आधी मात्रा तथा एस.एस.पी. एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई से पहले ही खेत में डाल दें। तथा यूरिया की बची हुई मात्रा प्रथम सिंचाई पर डालें। खाद व बीज बीज कभी भी मिलकर बिजाई न करें।

खरीफ की सब्जियों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों का प्रबंधन

संजीव रंजन सिन्हा और राकेश कुमार शर्मा
कीट विज्ञान संभाग
भा कृ अनु प –भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –1100012

भारत का दुनिया में कुल सब्ज़ी उत्पादन का लगभग 14 प्रतिशत योगदान है जो कि हमारे देश में 93.96 लाख हैक्टेयर भूमि में सब्जियां उगाई जाती हैं। सब्जियाँ एक महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक भोजन हैं, जो उच्च स्वास्थय और रोगों की रोकथाम में रख रखाव के लिए अत्यधिक फायदेमंद है। इनमें बहुत से पोषक तत्व होते हैं, जो शरीर के निर्माण तथा सुधार के लिए सफलतापूर्ण उपयोग किया जाते है। सब्जियाँ कम वसा, कम कैलोरी तथा कोलेस्ट्रॉल के बिना होती हैं। इनके अलावा, ज्यादातर सब्जियों में एक घटक फाईटोकैमिकल्स होते हैं जो मानव स्वास्थय पर चरम लाभकारी प्रभाव होने के रूप में उद्धृत किए गए हैं।

व्यापारिक दृष्टि से खरीफ में बैंगन, भिंड़ी, टमाटर, मिर्ची तथा कददू वर्गीय सब्जियाँ भारत में महत्वपूर्ण हैं। कीटनाशकों के उपयोग के बावजूद कीटों और रोगों के कारण इन सब्जियों को काफी नुकसान पहुँचता है। एकीकृत कीट प्रबंधन करने से सब्जियों में कीटनाशकों के प्रयोग में कमी लाई जा सकती है।

बैंगन

बैंगन एक लोकप्रिय, आसानी से उपलब्ध और सस्ती सब्जियों में से एक है। इसमें कई औषधीय गुण होते हैं जो कैंसर, उच्च रक्तचाप, मधुमेंह, बढ़ती उम्र, सूजन और स्नायाविक रोगों के लिए उपयोगी होते हैं। व्यापारिक दृष्टि से बैंगन को विभिन्न प्रकार के कीट समय समय पर नुकसान पहुँचाते है।

धब्बेदार पत्ती भ्रंग या हड्डा भ्रंग – इस कीट के वयस्क एवं ग्रब/शिशु दोनों ही पत्तियों के हरे व मुलायम भाग को खुरचकर उनमें छेद बनाकर खाते हैं। इसके कारण पत्तियों का केवल ढांचा ही शेष रह जाता है तथा ग्रसित पौधे सूख–कर मर जाते हैं।

प्ररोह एवं फल छेदक– यह कीट बैंगन की फसल का प्रमुख शत्रु है। इसकी सूंडी बैंगन की प्रारंभिक अवस्था से फल अवस्था तक सक्रिय रहती है। बैंगन के पौधे जब 30–40 दिन के होते हैं तभी से इसका प्रकोप आरंभ हो जाता फल अवस्था में यह उनके अन्दर का गूदा खाती है व फलों का बाज़ार मूल्य कम हो जाता है।

फुदका– यह कीट पत्तियों तथा कोमल टहनियों का रस चूसता है। यह आकार में छोटा तथा हरे रंग का होता इस कीट के प्रभाव से पत्तियां ऊपर मुड़ जाती हैं। अधिक प्रभाव से पत्तियां पीली अथवा भूरी हो जाती हैं। ये कीट तिरछे चलते हैं।

चेंपा– इसके अर्भक एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों व ऊपरी टहनियों का रस चूसकर पौधों को हानि पहुँचाते हैं। ये कीट मधु जैसा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिससे पत्तियों पर काले रंग का फफूँद लग जाता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित हो जाती है।

लाल मकड़ी माइट – इसके शिशु व वयस्क पत्तियों की कोशिकाओं का रस चूसते हैं जिससे पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं।

रोकथाम –

1 एक ही खेत में लगातार बैंगन की फसल को नहीं लेना चाहिए।

2 अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित जातियों के बीज उगाएं।

3 एपीलेक्ना/हड्डा भ्रंग के अण्डों और ग्रब्स को एकत्रित करके नष्ट कर दें।

4 फल छेदक की निगरानी के लिए फेरोमोन ट्रैप (5 प्रति है.) लगाएं।

5 मकड़ी एवं परभक्षी कीटों के विकास एवं गुणन के लिए मुख्य फसल के बीच–बीच में और चारों तरफ बेबीकॉर्न

लगाएं जो बर्ड पर्च का भी कार्य करती है।

6 फल छेदक द्वारा क्षतिग्रस्त प्ररोहों को तोड़कर नष्ट कर दें। इस क्रिया से फल छेदक द्वारा हानि में काफी कमी आ जाती है।

7 एजाडायरेक्टिन युक्त नीम का तेल (300 पीपीएम) का छिड़काव 5 मिली/लीटर का 15 दिनों के अंतराल पर करने पर छेदकों और हड्डा भ्रंग के प्रकोप में कमी आ जाती है।

8 फल छेदक के नियंत्रण के लिए ट्राइकोग्रामा ब्रासेलिअनसिस (1 लाख/है.) का उपयोग 2–3 बार करें।

9 छेदकों के प्रकोप में कमी लाने के लिए मेंटाराइजियम एनोसोली 1 ग्रा./ली. के दर से छिड़काव करें।

10 आवश्यकतानुसार फल छेदक के नियंत्रण के लिए साइपरमेंथ्रिन 25 ई.सी. (3 मि.ली./10 ली.) या लैम्डा साइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. (5 मि. ली./10 ली.) या इमामेंक्टिन बैन्ज़ोएट 5 एस.जी. (2 ग्रा./10 ली.)या बीटासाइफ्लूथ्रिन इमीडाक्लोप्रिड (3 मि.ली./10 ली.) या ट्राइजोफॉस डेल्टामेंथ्रिन (2 मि.ली./ली.) के मिश्रण का छिड़काव करें।

भिण्डी

भिण्डी पूरी तरह से विषैले एवं दुष्प्रभावों रहित, पोषक तत्वों से भरपूर तथा निर्यात करने के लिए आर्थिक महत्व वाली एक सब्जी है। इसे ठंडे देशों में गर्मियों के दौरान और उष्णकटिबंध क्षेत्रों में वर्ष भर उगाया जाता है।

भिण्डी का प्ररोह एवं फल छेदक– इसकी सुंडी चित्तीदार होती है। फल लगने पर उसमें छेद बनाकर अन्दर गूदा खाती है और ग्रसित फल मुड़ जाते हैं और भिण्डी खाने योग्य नहीं रहती है।

भिण्डी का फुदका या तेला– शिशु एवं वयस्क दोनों ही हानिकारक होते हैं। ये पौधे को पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। इससे ग्रसित पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर मुरझाकर सूख जाती हैं। बदली के मौसम में इसका प्रकोप बढ़ जाता है। यह हमेंशा तिरछे चलते हैं।

सफेद मक्खी – यह सफेद रंग की छोटी मक्खी होती है तथा पत्तियों का रस चूसती है। यह भिण्डी में 'येलो वेन मोजैक वायरस' फैलाती है जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इस बीमारी से पैदावार में काफी कमी आ जाती है और फल खाने योग्य नहीं रह जाता है।

माइट– यह बहुत ही सूक्ष्म लाल रंग के होते हैं। फसल की परिपक्वता वाली स्थिति में ये ज्यादा हानि पहुँचाते हैं। यह पौधों की पत्तियों और तनों के ऊपर जाला सा बनाकर उन्हें कमज़ोर कर देते हैं। इनके प्रभाव से पत्तियां टेढ़ी पड़ जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

रोकथाम–

1 अपने क्षेत्र के लिए अनुमोदित और प्रमाणित जातियों के बीज ही प्रयोग में लाएं।

2 अगर संभव हो तो विषाणु प्रतिरोधी किस्में ही प्रयोग में लाएं और रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

3 मकड़ी एवं परभक्षी कीटों के विकास एवं गुणन के लिए मुख्य फसल के बीच–बीच में और चारों तरफ बेबीकॉर्न लगाएं जो बर्ड पर्च का भी कार्य करती है।

4 नीम के अर्क (एन. एस. के. ई.) का 5 प्रतिशत घोल का 2–3 बार छिड़काव करने पर कीटों के प्रकोप में कमी आ जाती है। यह छिड़काव दोपहर बाद करना चाहिए।

5 फल छेदक की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर लगायें।

6 छेदक के नियंत्रण के लिए बी०टी० (1–2 ग्रा./लि.) या बिवेरिया बैसियाना (1 ग्रा./लि.) से छिड़काव करें।

7 फल छेदक के नियंत्रण के लिए ट्राइकोग्रामा काइलोनिस (1 लाख/है.) के दर से 2–3 बार उपयोग करें।

8 यदि आवश्यक हो तो फल छेदकों के नियंत्रण के लिए साइपरमेंथ्रिन 25 ई.सी. (5 मि.ली./10 ली.) या लैम्डा साइहैलोथ्रिन 5 ई.सी. (5 मि.ली./10 ली.) या इमामेंक्टिन बैन्ज़ोएट 5 एस.जी. (2 गा./10 ली.) का छिड़काव करें।

टमाटर

टमाटर दुनिया की एक प्रमुख फसल है जिसने अपने विशेष पोषक मूल्यों की वजह से लोकप्रियता हासिल की है। यह दुनिया के हर देश में उगाया जाता है। टमाटर

की फसल में मुख्य रूप से फल छेदकों से भारी नुकसान होता है।

चने की सुंडी– यह एक बहुभक्षी कीट है जो टमाटर को भारी नुकसान पहुंचाता है। पौधे में फूल आने से पहले के समय में सुंडी कोमल शाखाओं, पत्तियों तथा फूलों को खाती है, जिसके कारण फसल छिद्रित दिखती है। फल लगने के बाद, सुंडी फल में गोल छेद बनाकर अपने शरीर का आधा भाग अंदर घुसाकर फल का गूदा खाती है जिस कारण फल सड़ जाता है।

तम्बाकु की सुंडी– यह भी एक बहुभक्षी कीट है। इसकी सुंडी प्रारंभ में समूह में रहकर पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर खाती हैं। पूर्ण विकसित सुंडियाँ पत्तियों को काटकर खाती हैं तथा यह रात के समय में अधिक सक्रिय होती है।

सफेद मक्खी– इसके वयस्क एवं शिशु (निम्फ) पत्तियों का रस चूस लेते हैं तथा पत्ती मरोड़क मोज़ैक बीमारी फैलाते हैं। छोटे सफेद जीव पत्तियों के नीचे पाए जाते हैं।

लीफ माइनर– इसकी मादा पत्तों की शिराओं में छेद करके उनमें अण्डे देती हैं। यह पत्तियों का हरा पदार्थ खाकर उनमें सुरंगे बनाती हैं।

रोकथाम –

1 पत्ती मरोड़क प्रतिरोधी किस्म उगायें और बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

2 टमाटर की रोपाई करने के दौरान प्रत्येक 10–15 कतार के बाद गैंदे के पौधों की एक कतार की रोपाई करें। ऐसा करने से चने की सुंडी का नियंत्रण होता है।

3 फल छेदक की निगरानी के लिए पाँच फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर के दर से लगाएं।

4 क्षतिग्रस्त फलों को जमीन में गाड़कर नष्ट कर दें।

5 *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* का प्रयोग फल छेदक के नियंत्रण के लिए 50,000 प्रति हैक्टेयर के दर से दो से तीन बार करें।

6 फल छेदक के प्रकोप से बचने के लिए एजाडायरेक्टिन (10000 पीपीएम) का छिड़काव 1–2 ग्रा./ली. के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

7 रस चूसने वाले कीटों से बचाव के लिए इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (2 मि.ली./10 ली.) या थायामिथोक्सम 25 डब्ल्यू.जी.(2 ग्रा./10 ली.) का प्रयोग करें।

8 सुंडियों से संबंधित एन.पी.वी. का छिड़काव 250 एल.ई./है. के दर से करें।बी. टी. का एक या दो छिड़काव 1 ग्रा./ली. के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

9 आवश्यकता होने पर लैम्डा–साइहैलोथ्रिन (5 मि.ली./10 ली.) या इन्डोक्साकार्ब (0.5 मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।

मिर्ची

मिर्ची एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जो दुनिया भर में उगाई जाती है, परन्तु इसका सबसे ज्यादा उत्पादन एशियाई देशों में होता है। मिर्ची में कई रासायनिक घटक होते हैं जो रोगों को रोकने और स्वास्थ्य के गुणों को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं।

माइट– इसके बच्चे एवं वयस्क दोनों ही हानिकारक हैं जो अपने थूक से पत्तियों पर जाला सा बुनकर हरा पदार्थ खाती रहती हैं। इन जालों में हजारों की संख्या में माइट मिलती हैं। इसके प्रभाव से पत्तियां टेढ़ी भी पड़ जाती हैं और उन पर धब्बे पड़ जाते हैं।

थ्रिप्स– इनके शिशु एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों के हरे भाग को खरोंच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं। यह फूल एवं कोमल तनों का रस भी चूसते हैं। इनके प्रभाव से विषाणु बीमारियां भी मिर्च में फैलती हैं। थ्रिप्स का प्रभाव ऐसे खेतों में अधिक होता हैं जहाँ खेत सूखे होते हैं। इस कीट का प्रकोप सितम्बर से अक्तूबर तक अधिक रहता है।

माहू– यह पंखदार तथा पंखविहीन दोनों ही प्रकार के होते हैं। यह पत्तियों, कोमल तनों से हजारों की संख्या में पाए जाते हैं तथा रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते हैं।

फल छेदक– इस कीट की सुंडियां फलों के अन्दर घुसकर उन्हें नष्ट कर देती हैं।

रोकथाम –

1. नीम के अर्क (एन. एस. के. ई.) का 5 प्रतिशत घोल का 2–3 बार छिड़काव करने पर कीटों के प्रकोप में कमी

आ जाती है। यह छिड़काव दोपहर बाद करना चाहिए।

2. तम्बाकू की सुंडियों से बचने के लिए बी. टी. का एक या दो छिड़काव 1.5 ग्रा./ली. के दर से 15 दिनों के अंतराल पर करें।

3. थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (2 मि.ली./10 ली.) के छिड़काव से अच्छे परिणाम मिले हैं।

4. चेंपा की रोकथाम थ्रिप्स कीट की तरह करें। इसके अलावा डाईमेंथोएट 20 ई.सी. (2 मि.ली./ली.) या कार्बोसल्फॉन 25 एस. सी. (2 मि.ली./ली.) के घोल के छिड़काव से भी अच्छे परिणाम मिले हैं।

5. माइट को प्रोपर गाइट (2 मि.ली./ली.) या स्पाइरोमेंसिफिन (0.8 मि.ली./ली.) के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

6. थ्रिप, माइट और फल छेदक के नियंत्रण के लिए एमामेंक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. का छिड़काव 2 ग्रा/10 ली या इन्डोक्साकाब+एसीटामिप्रिड के मिश्रण का छिड़काव 1 मि.ली./ली. के दर से करें।

7. फल छेदक के नियंत्रण के लिए स्पाइनोसैड 45 एस. सी. (2 मि.ली./10 ली.) या नोवालूरॉन 10 ई.सी. (1 मि.ली./ली.) का छिड़काव करें।

करेला

करेले में उत्कृष्ट औषधीय गुण हैं। करेलों में कैलोरी बहुत कम तथा कीमती पोषक तत्व अधिक होते हैं। यह संक्रमण के खिलाफ अपने शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करने के लिए प्रतिरक्षा प्रणाली का निर्माण करता है। यह विशेष रूप से मधुमेंह के लिए चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सफेद मक्खी– निम्फ और वयस्क दोनों ही पत्तियों का रस चूसते हैं। फलस्वरूप पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। अधिक क्षति होने पर यह कीट पौधों में मोजैक वायरस बीमारी फैलाते हैं जिसके कारण उत्पादन में बहुत हानि होती है।

लाल भ्रंग– यह भ्रंग पत्तों को खाता है जिससे अनियमित छेद या पूरी पतझड़ हो जाती है तथा पौधे को गंभीर नुकसान होता है।

फल मक्खी – करेले में फल मक्खी का प्रकोप अत्यधिक होता है। वयस्क मादा अपने डंक द्वारा फल में अंडे देती है और उनमें से लार्वा/सुंडी निकलकर फल के अन्दर के गूदे को खाकर 7–9 दिन में पूर्णतया बड़े हो जाते हैं। इन मक्खियों द्वारा हमला किए गए फल वक्रित हो जाते हैं और झड़ भी जाते हैं।

रोकथाम –

1 कीट एवं रोगरोधी प्रजाति का चुनाव करें।

2 प्रत्येक 4–5 दिन बाद संक्रमित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें या प्लास्टिक के मज़बूत थैलों में भरकर उनका मुँह बाँध दें। इन थैलों को एक सप्ताह बाद खाली किया जा सकता है।

3 नरनाशी तकनीक का इस्तेमाल करें। इसके लिए क्यूलूर का फेरोमोन ट्रैप प्रयोग करें और दो सप्ताह पश्चात प्लाईवुड का टुकड़ा जिसमें क्यूलूर है, उसे बदल देना चाहिए।

4 प्रोटीन प्रलोभन का छिड़काव करें। यह सम्मिश्रण प्रोटीन व कीटनाशी से बनाया जाता है। इस मिश्रण का पूरे खेत में छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि सीमित दायरे में छिड़काव पर्याप्त होता है।

5 छोटे फलों के मुरझा जाने का कारण फल मक्खी होती है। आवश्यकता होने पर स्पाइनोसैड 45 एस.सी. (2 मि.ली./10 ली. पानी) का छिड़काव करें।

सारणी 1: सब्जियो के कीटों के प्रबंधन में उपयोग में लाए जाने वाले कीटनाशकों की मात्रा

कीटनाशक	फॉमुलेशन	मात्रा	मात्रा (ग्रा./ए. आई./है.)	फार्मूलेटिड कीटनाशक (मि.ली./ ग्रा./है.)	कीटनाशक/पानी
एसीटामिप्रिड	20 एसपी	0.0025& 0.003	10 & 20	50 & 100	1-2 ग्रा/10 ली.
बीटासाइफ्लूथ्रिन इमीडाक्लोप्रिड	8.49+19.81 ओडी	0.0037-0.004	52-60	175-200	0.3-0.4 मि.ली./ ली.

बुप्रोफेजिन	25 एसडी	0.03	150	600	1 मि.ली. / ली.
कार्बरिल	50 डब्लूपी	0.1	1000	2000	4 ग्रा/ ली.
कार्बोफयुरान	3 सीजी	-	500-1000	16600-33300	-
कार्बोसल्फान	25 एससी	0.05	250	1000	2 मि.ली. / ली.
कार्टप हाइड्रोक्लोराइड	50 एसपी	0.05	50	500	1 ग्रा/ ली.
क्लोरएन्ट्रानिलीप्रोल	18.5 एससी	0.0002-0.0006	10-30	50-150	1-3 मि.ली. / 10 ली.
क्लोरपाइरीफॉस	20 ईसी	0.04	200	1000	2 मि.ली. / ली.
साइपरमेंथ्रिन	10 ईसी	0.01& 0.014	50&70	550&760	1 मि.ली. / ली.
साइपरमेंथ्रिन	25 ईसी	0.007& 0.01	37&50	150&200	3 मि.ली. /10 ली.
डेल्टामेंथ्रिन	2.8 ईसी	0.002& 0.003	10&15	400&600	1 मि.ली. / ली.
डाईक्लोरवॉस	76 ईसी	0.05-0.1	375-750	470-940	1 मि.ली. / ली.
डाईमेंथोएट	30 ईसी	0.04 & 0.08	200&600	600&1980	1-2 मि.ली. / ली.
इमामेंक्टिन बेंजोएट	5 एसजी	0.002	10	200	2 गा/10 ली.
फिप्रोनिल	5 ईसी	0.01	50-100	1000-2000	2 मि.ली. / ली.
फ्लूबैन्डामाइड	20 एसजी	0.0025-0.0005	25-50	125-250	1 मि.ली. / 4 ली.
इमीडाक्लोप्रिड	17.8 एसएल	0.004	20	112	2 मि.ली. 10 ली.
इन्डोक्साकाब	14.5 एससी	0.006-0.015	30-75	200-500	0.5 -1 मि.ली. / ली.
इन्डोक्साकाब +एसी. टामिप्रिड	14.5+7.7 एससी	0.008-01	88-111	400-500	0.8-1 मि.ली. / ली.
लैम्डा साइहैलोथ्रिन	5 ईसी	0.003-0.005	15-25	300-500	0.5 -1 मि.ली. / ली.
मेंलाथियोन	50 ईसी	0.10 & 0.15	500&750	1000&1500	2 -3 मि.ली. / ली.
मिथोमिल	40 एसपी	0.075-0.1	300-450	750-1125	1-2 मि.ली. ली.
नोवालूरॉन	10 ईसी	0.015	75	750	1 मि.ली. / ली.
प्रोफेनोफोस	50 ईसी	0.05 & 0.1	250& 500	500&1000	1-2 मि.ली. / ली.
प्रोपर गाइट	57 ईसी	0.10	570	1000	2.5 मि.ली. / ली.
स्पाइनोसैड	45 एससी	0.015	75	166	2-3 मि.ली. /10 ली.
स्पाइरोमेंसिफिन	22.9 एससी	0.008	96	400	0.8 मि.ली. / ली.
थायाक्लोप्रिड	21.7 एससी	0.005-0.01	24-72	100-125	2 मि.ली. /10L
थायामिथोक्साम	25 डब्लूजी	0.01& 0.02	25 & 50	100& 200	2-4 ग्रा./10 ली.
ट्राइजोफॉस + डेल्टाम. `थ्रिन	35+1 ईसी	0.072	360	1000	2 मि.ली. / ली.

धान की फसल के प्रमुख नाशीजीव व उनका समेंकित प्रबंधन

आशीष कुमार सिंह, राहुल कुमार तिवारी एवं अनिल सिरोही
भा.कृ.अनु.प. भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली– 110012

चावल विश्व में 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के लिये मुख्य खाद्य है। भारत में चावल की खेती 42.56 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर की जाती है तथा जिसका उत्पादन कुल 95.32 मिलियन टन है। चावल का भारत के कुल खाद्य अनाज उत्पादन में 43 प्रतिशत हिस्सेदारी है।

चावल ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है, जिसमें 70 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 6–7 प्रतिशत प्रोटीन, 2–2.5 प्रतिशत वसा, विटामिन बी–समूह तथा खनिज लवण पाये जाते हैं। चावल में 100 से अधिक नाशीजीव हानि पहुँचाते हैं जिनमें कीट, कवकजीवाणु व सुत्रकृमि प्रमुख रूप से आर्थिक महत्व के है।

धान के प्रमुख नाशीजीवों का वर्णन निम्नवत है–

(1) धान का तना बेधक कीट

प्रौढ़ कीट हल्के पीले रंग के, जिनके अगले पंखों पर काले रंग के छोटे धब्बे पाये जाते हैं तथा शरीर के पश्च भाग पर पीले रंग के बालों के गुच्छे पाये जाते हैं। नर कीट, मादा कीट से छोटा होता है तथा उनके पंख मादा की तुलना में हल्के रंग के होते हैं। प्रौढ़ कीट का आकार 25–45 मि0मी0 होता है तथा ये कीट प्रकाश प्रिय होते हैं, तथा रात्रि में प्रकाश की तरफ आकर्षित होते हैं। लार्वा या इल्ली का आकार 20 मिमी0, शरीर का रंग हल्का पीला व सिर भूरे रंग का होता है। इल्ली में अग्रवक्षीय शील्ड पायी जाती है जो विकसित होती है।

जीवन चक्र –

मादा निषेचन के उपरांत 2–3 दिन तक सायंकाल में पत्तियों के शिखर पर 80–195 अंडे, प्रायः 2 या 3 समूह में देती है, तथा मादा अंडों को हल्के पीले रंग के बालों से जो उदर भाग पर पाये जाते हैं, से ढक देती हैं। अंडे 5–8 दिन बाद प्रस्फुटित होते हैं। अंडो से निकली हुई सूँडी पत्ती की सतह पर एक या दो घंटे तक घूमती है, तत्पश्चात्, रेशमी धागे से लटककर निकट पौधे पर पहुँच जाते हैं या पानी में गिरकर, तैर कर पौधे के पास पहुँच जाते हैं। सूँड़ी पौधे के पत्ती के आवरण में छेदकर तने में घूस जाती है और 2–3 दिन तक तने के अंदर ही खाती हैं तथा तने को खोखला कर देती हैं जिसे 'डेड हर्ट' कहते हैं।

क्षति–

इस कीट की सूँड़ियाँ तने में घुसकर खोखला कर देती हैं जिससे मुख्य तना सूख जाता है यदि पौधे में बालियाँ लगती हैं तो उनमें दाने नहीं बनते हैं। ये कीट अप्रैल से अक्टूबर महीने तक सक्रिय होते हैं।

प्रबंधन–

- फसल कटने के उपरांत पौधे की डंडियों को जलाकर नष्ट कर दें, जिससे उनमें छिपी सूँड़ियाँ मर जायें।
- अंडों के समूह को पत्तियों से निकालकर नष्ट कर दें।
- नये पौध की रोपाई 20 सें.मी. × 20 सें.मी. पर करें।
- फसल को काटने के उपरांत खेत की जुताई कर दें।
- ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलट हल से जुताई कर खेत को खुला छोड़ दें।
- पौधरोपण से पूर्व पौध की पत्तियों के ऊपरी शिरे को काट दें।
- प्रकाश प्रपंच का उपयोग कर प्रौढ़ कीट को आकर्षित कर के नष्ट कर दें।
- धान की प्रतिरोधी किस्मों जैसे– साकेत–4, मसूरी, रत्ना, IR-36, विकास आदि का प्रयोग करें।
- जैविक नियंत्रण हेतु ट्राइकोग्रामा जपोनिकम @50000/ हेक्टेयर, फसल की रोपाई के 30 दिन बाद से प्रति सप्ताह, 4–5 सप्ताह तक छोड़ें।

- फेरोमेंन प्रपंच @20 प्रपंच/हेक्टेयर, लगाकर नर कीट को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- जब आर्थिक देहली स्तर (ETL) 10 प्रतिशत, डेड हर्ट या 1 अण्ड समूह प्रति मीटर^2 पहुँच जाये तो निम्न रसायनों का छिड़काव करें–
    - स्पाइनोसेड/मोनोक्रोटोफॉस (नुवाक्रान) 0.5 किग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
    - फाइब्रोनिल (रीजेंट) 5 प्रतिशत एस.सी. @ 1ली0/हे. तीन बार, पहला छिड़काव नर्सरी में पौध रोपण से 1 सप्ताह पूर्व दूसरा छिड़काव पौधरोपण के 1 पखवाड़े बाद, तथा तीसरा छिड़काव पौधरोपण के 35–40 दिन बाद करें।
    - पौधरोपण से पूर्व पौध की जड़ों को 0.02 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफॉस से उपचारित करने पर 1 माह तक तना बेधक से सुरक्षा मिलती है।

2. धान का भूरा फुदका:

इन कीटों के प्रौढ़ 4–5 मिमी0 लम्बे भूरे रंग के होते हैं। इनके पंख पारदर्शी तथा शिरायें गहरे रंग की होती है। प्रौढ़ कीटों की पिछली टांगे के टिबिया खंड पर एक गतिशील स्पर (spur) पाया जाता है। ये कीट दो तरह के होते हैं–

1- **मेंक्रोप्टेरस**– इनमें विकसित पंख पाये जाते हैं। ये कीट एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र में आक्रमण करते हैं।

2- **ब्रैकिप्टेरस**– इनमें पंख छोटे होते हैं, तथा ये कीट अंडे नहीं देते हैं।

पोषक पौधे –

धान, गन्ना या घास इस कीट के मुख्य पोषक पौधे हैं।

जीवन चक्र –

उष्ण क्षेत्रों में यह कीट वर्ष भर प्रजनन करते हैं। उत्तर भारत में ये कीट सितम्बर–अक्टूबर महीने में अधिक सक्रिय होते हैं। मादा कीट निषेचन के 273 दिन बाद अंडे देना प्रारम्भ कर देती है। प्रायः अंडे पत्तियों की निचली सतह पर मध्य शिरा के बगल में दो कतार में लगभग 250–350 अंडे दिये जाते हैं। अंडे गहरे रंग के जिन पर दो धब्बे होते हैं। अंडों का प्रस्फुटन काल लगभग 30–35 दिनों तक होता है। अंडों से निकले निम्फ 10–11 दिन में प्रौढ़ हो जाते हैं।

क्षति–

निम्फ व प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ भूरी/पीले रंग की हो कर सूखने लगती हैं, जिसे हॉपर बर्न कहते हैं। ये कीट विषाणु जनित रोग जैसे–Rice grassy stunt virus के वाहक होते हैं। इन कीटों से 10–70 प्रतिशत तक का नुकसान होता है।

प्रबंधन–

- जैविक नियंत्रण के लिये *Cyrtorhinus lividipennis*@50–75 अंडा/मीटर^2 या प्रौढ़ 100 मीटर^2 खेत में छोड़ें।

  या *Lycosa pseudoannulata* (परभक्षी माइट) @ 3 माइट प्रति हिल खेत में छोड़ें।
- जब आर्थिक देहली स्तर 5–10 कीट/हिल पहुँचे तो कीटनाशी रसायन का प्रयोग करें।

3. धान का टिड्डा :

यह कीट बहुभक्षी है, व भारत के सभी प्रांतों में पाया जाता है जहाँ पर धान की खेती की जाती है।

पहचान–

इस कीट के प्रौढ़ 40–50 मिमी0 लम्बे, हरे–पीले रंग के तथा अग्रवक्ष पर तीन काले रंग की लाइनें पाई जाती है। इन कीटों का अगला पंख चमड़े की तरह सख्त होते हैं जिसे Tegmina कहते हैं, इन कीटों में धागाकार श्रृंगिका, कूदने वाली टांगे, तथा मुखाँग काटने व चबाने वाले होते हैं।

पोषक पौधे –

ये कीट बहुभक्षी होते हैं, तथा धान व अन्य खरीफ फसलों पर आक्रमण करते हैं।

जीवन चक्र –

यह कीट वर्ष भर में केवल एक ही पीढ़ी पूर्ण करते हैं।

मादा शरद ऋतु अक्टूबर–नवम्बर में नम भूमि में पीले रंग के अंडे अंडकोष में देती है तथा प्रत्येक अंड कोष में

50–60 अंडे होते हैं। एक मादा प्रायः 300–500 अंडे देती हैं। अंडे जून–जुलाई में जब पहली बारिश होती है तो प्रस्फुटित होते हैं। अंडों से निकले निम्फ 8–10 सप्ताह में प्रौढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार इनमें अपूर्ण रूपांतरण होता है। पूरा जीवन चक्र लगभग 16 सप्ताह में पूर्ण होता है।

क्षति–

ये कीट प्रायः पत्तियों को खाते हैं। इनसे क्षतिग्रस्त पत्तियों में केवल मध्य शिरा ही बचती है। सबसे अधिक हानि अगस्त–सितम्बर माह में होती है। कभी–कभी ये सम्पूर्ण पुष्पक्रम को दाँतों से कुतर देते हैं जिससे बालियों में दानें नहीं बनते हैं और इस अवस्था को ''सफेद बाली'' कहते हैं।

प्रबंधन–

- अप्रैल–मई महीने में खेत की गहरी जुताई करें, जिससे अंडे नष्ट हो जाये।
- मेंड़ों को छाँटकर साफ कर दें।
- खेतों के किनारे खरपतवार न पनपने दें
- प्रकाश प्रपंच लगायें।
- विषप्रलोभिकाओं का प्रयोग करें।
- गेहूँ की भूसी (10 किग्रा0) + सोडियम अर्सिनेट (0.5 किग्रा0) + शीरा (2 लीटर) + 4 ली0 पानी।
- मेंलाथियान 5 प्रतिशत धूल @ 25 किग्रा0/हेक्टेयर का बुरकाव करें।

4. पती लपेट सूण्डी

इस कीट की सूण्डी पत्ती के हरे पदार्थ का खा जाती है तथा पत्ती सिकुड़ कर भूरे रंग की होकर मुड़ जाती है। इसके पतंगे संतरी भूरें रंग के होते हैं इसकी रोकथाम के लिए रोगोर की 1.50 मि.ली. या क्लोरोपाइरिफोस 2 मि. ली. या एसिफेट की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर समान रुप से छिड़काव करना चाहिए

5. गन्धी बग कीट

यह कीट खेत में दुर्गन्ध फैलाता है इसलिए इसको गन्धी कीट कहते है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ दानों की दूधिया अवस्था में पत्तियों के रस को चूस कर फसल को नुकसान पहुँचाते है। इसके प्रकोप से फसल को बचाने के लिए सावा घास के पौधे खेत में निकाल दें तथा रोगोर या मेंलाथियान 1.50 मि.ली. या एसिफेट 75 एस.पी. की 1.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

6. सैनिक कीट

यह कीट फसल की पत्तियों के बीच की शिखा को छोड़ते हुए अधिकतर पत्ती को खा जाता है। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपाइरिफास की 2.5 मि.ली. या इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.पी. की 0.75 मि.ली. मात्रा को प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

7. धान का जड़ गांठ सूत्रकृमि

इन परजीवीयों का आक्रमण नर्सरी व प्रमुख क्षेत्र दोनों में दिखाई देता है। इनके आक्रमण से पौधों की बढ़वार रुक जाती है तथा पत्तियां पीली पड़ जाती हैं टर्मिनल जड़ों में हुक के आकार की गांठे दिखाई देती हैं।

पोषक पौधे –

धान की फसल के अलावा यह नाशीजीव भिंडी, लहसुन, गोभी, चुकंदर, सोयाबीन आदि फसलों को भी प्रभावित करता है

जीवन चक्र –

इनके जीवन चक्र में 6 अवस्थाएं होती हैं। द्वितीय जुवेनाइल अवस्था (J2) जड़ों को भेद कर अंदर प्रवेश कर जाती है तथा जड़ों की वैस्कुलर कोशिकाओं को जायंट सेल में परिवर्तित कर आवश्यक पोषक तत्त्व प्राप्त करती हैं। जिससे पौधों के लिए जल व आवश्यक पोषक तत्व पौधों के ऊपरी भागों तक नहीं पहुँच पते हैं जिससे पौधों की वृद्धि एवं विकास रुक जाती है तथा दाने कम बनते हैं।

प्रबंधन–

- अप्रैल–मई महीने में खेत की गहरी जुताई करें।
- खेतों में खरपतवार न पनपने दें।
- गैर पोषित फसल जैसे मूंगफली, आलू, सरसों एवं चना उगाएं।
- धान की प्रतिरोधी किस्मों जैसे–ARC-12620, INRC-

2002, CR-94-CCRP-51आदि उगाएं।

- नर्सरी उगाने से पूर्व मई जून के महीने में मृदा सौरी करण करें।
- नर्सरी में कार्बोफ्यूरान की 0.3 ग्राम सक्रिय अवयव प्रति वर्ग मीटर की दर से मृदा में बुवाई से पूर्व उपयोग में लाएं।
- प्रमुख क्षेत्र में कार्बोफ्यूरान की 1 किलोग्राम सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर की दर से पौधरोपण के 40 दिन बाद मृदा में डालें।
- नीम की खली 100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से नर्सरी में बुवाई से 15 दिन पूर्व खेत में डालें।
- जैविक नियंत्रण हेतु *स्यूडोमोनास फ्लुओरेसेन्स*/20 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से नर्सरी में डाले।

8. जीवाणुज पर्ण झुलसा

जीवाणुज पर्ण झुलसा रोग लगभग पूरे विश्व के लिए एक परेशानी है। भारत में मुख्यतः यह रोग धान विकसित प्रदेशों जैसे– पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, छत्तीषगढ़, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटका, तमिलनाडु में फैली हुई है। इसके अलावा अन्य कई प्रदेशों में भी यह रोग देखी गई है।

कारक

यह रोग जैन्थोमोनास ओराइजी पी.वी. ओराइजी नामक जीवाणु से होता है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण निम्न तीन प्रावस्थाओं में देखे जा सकते हैं

- अंगमारी प्रावस्था
- क्रेसक प्रावस्था
- हलकी पीली पॉर्न प्रावस्था

मुख्य रूप से यह पत्तियों का रोग है। यह रोग कुल दो अवस्थाओं में होता है, पर्ण झुलसा अवस्था एवं क्रेसेक अवस्था। सर्वप्रथम पत्तियों के ऊपरी सिरे पर हरे–पीले जलधारित धब्बों के रूप में रोग उभरता है। पत्तियों पर पीली या पुआल के रंग कभी लहरदार धारियाँ एक या दोनो किनारों के सिरे से शुरू होकर नीचे की ओर बढ़ती है और पत्तियाँ सूख जाती हैं। ये धब्बें पत्तियों के किनारे के समानान्तर धारी के रूप में बढ़ते हैं। धीरे–धीरे पूरी पत्ती पुआल के रंग में बदल जाती है। ये धारियां शिराओं से घिरी रहती है, और पीली या नारंगी कत्थई रंग की हो जाती है।

मोती की तरह छोटे–छोटे पीले से कहरूवा रंग के जीवाणु पदार्थ धारियों पर पाये जाते हैं, जिससे पत्तियाँ समय से पहले सूख जाती हैं। रोग की सबसे हानिकारक अवस्था म्लानि या क्रेसक है, जिससे पूरा पौधा सूख जाता है। रोगी पत्तियों को काट कर शीशे के ग्लास में डालने पर पानी दूधिया रंग का हो जाता है।

जीवाणु झुलसा के लक्षण धान के पौधे में दो अवस्थाओं में दिखाई पड़ते हैं। म्लानी अवस्था (करेसेक) एवं पर्ण झुलसा (लीफ ब्लास्ट) जिसमें पर्ण झुलसा अधिक व्यापक है। झुलसा अवस्था पत्ती की सतह पर जलसिक्त क्षत बन जाते है, और इनकी शुरूआत पत्तियों के ऊपरी सिरों से होती है। बाद में ये क्षत हल्के पीले या पुआल के रंग के हो जाते हैं, और लहरदार किनारे सहित नीचे की ओर इनका प्रसार होता है। ये क्षत उत्तिक्षयी होकर बाद में तेजी से सूख जाते हैं।

म्लानी या क्रेसेक अवस्था रोग की यह अवस्था दौजियाँ बनना आरम्भ होने के दौरान नर्सरी में दिखाई पड़ती हैं। पीतिमा एवं अचानक म्लानी इसके सामान्य लक्षण है। म्लानि वस्तुतः लक्षण की दूसरी अवस्था है। ये लक्षण रोपाई के 3–4 सप्ताह के अन्दर प्रकट होने लगते है। इस अवस्था में ग्रसित पौधों की पत्तियाँ लम्बाई में अन्दर की ओर सिकुड़कर मुड़ जाती है। जिसके फलस्वरूप पूरी पत्ती मुरझा जाती है, जो बाद में सूख कर मर जाती है।

रोगचक्र एवं पूर्वानुकूलता

यह मुख्यतः एक विशिष्ट संवहन तंत्र रोग है। इसका रोगजनक जीवाणु कुछ जंगली घासों जैसे लेप्टोचलोआ चिनेन्सिस और लीरसिआ ओरोइड्स इत्यादि के ऊपर जीवित रहता है। जीवाणु बीजों में भी बहुत समय तक जीवित रहता है। जीवाणु पौधों के जड़ों एवं भूमि के निकट बने तने के घावों तथा पत्तियों के जलरंध्रों द्वारा भीतर प्रवेश करता है। भारत में यह रोग 25 तापमान पर बहुत तीव्रता से होता है। जिन क्षेत्रों में अधिक वर्ष होती हो एवं अधिक नमी हो, सिंचाई का गहरा जल उपस्थित हो वहां ये रोज

उग्र रूप धारण कर लेता है।

प्रबंधन

- रोग ग्रस्त खेतों से बीज का चयन नहीं करना चाहिए तथा प्रमाणित बीज ही बोने चाहिए ।
- खेतों में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए ।
- इम्प्रूवड पूसा बासमती 1 अत्यंत रोग प्रतिरोधी किस्म है, रोग रोधी किस्मों जैसे– आई. आर.–20, मंसूरी, प्रसाद, रामकृष्णा, रत्ना, साकेत–4, राजश्री और सत्यम आदि का चयन करें।
- एक ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 5 ग्राम एग्रीमाइसीन 100 को 45 लीटर पानी घोल कर बीज को बोने से पहले 12 घंटे तक डुबो लें।
- बुआई से पूर्व 0.05 प्रतिशत सेरेसान एवं 0.025 प्रतिशत स्ट्रेप्टोसाईक्लिन के घोल से उपचारित कर लगावें।
- बीजो को स्थूडोमोनास फ्लोरेसेन्स 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित कर लगावें।
- खड़ी फसल में रोग दिखने पर ब्लाइटाक्स–50 की 2.5 किलोग्राम एवं स्ट्रेप्टोसाइक्लिन की 50 ग्राम दवा 80–100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- खड़ी फसल में एग्रीमाइसीन 100 का 75 ग्राम और कॉपर आक्सीक्लोराइड (ब्लाइटाक्स) का 500 ग्राम 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें, लक्षण प्रकट होने पर नत्रजन युक्त खाद का छिड़काव नही करना चाहिए।
- धान रोपने के समय पौधे के बीज की दूरी 10–15 से. मी. अवश्य रखें।
- खेत से समय–समय पर पानी निकालते रहें तथा नाइट्रोजन का प्रयोग ज्यादा न करें।
- आक्रांत खेतों का पानी एक से दूसरे खेत में न जाने दें।

9. धान का झोंका

यह धान का एक प्रमुख रोग है। भारत में इस रोग को सर्वप्रथम बटलर ने 1913 में मद्रास में देखा था। आजकल यह रोज भारत में हिमालय बॉर्डर कश्मीर कलिम्पोंग, उत्तरपूर्व राज्य जैसे ओडिसा, आध्र प्रदेश, तमिलनाडु , केरल, महाराष्ट्र एवं गुजरात इत्यादि राज्यों में विनाशकारी रूप से आता है।

कारक

धान का यह रोग पिरीकुलेरिया ओराइजी (मेंगनापूरथे ग्रेसिआ) नामक कवक द्वारा फैलता है

लक्षण

धान का यह ब्लास्ट रोग अत्यंत विनाशकारी होता है। रोग के लक्षण पौधे के सभी वायव भागों पर पाए जाते हैं। पत्तियों और उनके निचले भागों पर छोटे और नीले धब्बे बनते हैं, और बाद में आकार में बढ़कर ये धब्बे नाव की तरह हो जाते है। बिहार में मुख्यतः इस रोग का प्रकोप सुगंधित धान में पाया जाता है।

इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर दिखाई देते हैं, लेकिन इसका आक्रमण पर्णच्छद, पष्पक्रम, गाँठो तथा दानों के छिलकों पर भी होता है। मुख्यतः पत्ती ब्लास्ट, पर्वसंधि ब्लास्ट और गर्दन ब्लास्ट के रूप में इस रोग को देखते हैं।

यह फफूँदजनित है। फफूंद पौधे के पत्तियों, गांठो एवं बालियों के आधार को भी प्रभावित करता है। धब्बों के बीच का भाग राख के रंग का तथा किनारे कत्थई रंग के घेरे की तरह होते हैं, जो बढ़कर कई सेन्टीमीटर बड़ा हो जाता है।

जब यह रोग उग्र होता है, तो बाली के आधार भी रोगग्रस्त हो जाते है, और बाली कमजोर होकर वहीं से टूट कर गिर जाती है। भूरे धब्बों के मध्य भाग में सफेद रंग होता है। इस अवस्था में अधिक क्षति होती है।

गांठ का भूरा–काला होना एवं सड़न की स्थिति में टूटना, दानों का खखड़ी होना एवं बाली के आधार पर फफूंद का सफेद जाल होना 'नेक राट' कहलाता है। क्षत स्थल के बीच का भाग घूसर रंग का हो जाता है। अनुकूल वातावरण में कई क्षतस्थल बढ़कर आपस में मिल जाते हैं, जिसके फलस्वरूप पत्तियां झूलसकर सूख जाती हैं। गाँठो पर भी भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जिससे समुचित पौधे को नुकसान पहुँचता है। तनों की गाँठें पूर्णतया या उसका कुछ

भाग काला पड़ जाता है, कल्लों की गाँठो पर कवक के आक्रमण से भूरे धब्बे बनते हैं, जिससे गाँठ के चारो ओर से घेर लेने से पौधे टूट जाते हैं। बालियों के निचले डंठल पर घूसर बादामी रंग के क्षतस्थल बनते हैं, जिसे 'ग्रीवा विगलन' कहते हैं।

रोगचक्र एवं पूर्वानुकूलता

कवक बीज एवं रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों में जीवित रहता है । यह कवक अनेक घासों जैसे लीरसिआ हेक्सान्द्र, डिजिटरी मारगीनता इत्यादि पर भी संक्रमण करता है। कोनिडियम के लिए 15 से 32 तापमान अत्यंत अनुकूल है। आपेक्षिक आद्रता के बढ़ने पर कोनिडियम बनने की गति तीव्र हो जाती है।

प्रबंधन–

- रोगरहित फसलों से ही बीज का चयन करें ।
- खेत के आस पास उगे हुए खरपतवार नष्ट करना अत्यंत आवश्यक है ।
- रोग रोधी किस्मों जैसे– आई आर 36, आई आर 64, पंकज, जमुना, सरजु 52, आकाशी और पंत धान 10 आदि को उगाना चाहिए।
- बीज को बोने से पहले बेविस्टीन 2 ग्राम या कैप्टान 2.5 ग्राम दवा को प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर लें।
- नत्रजन उर्वरक उचित मात्रा में थोड़ी–थोड़ी करके कई बार में देना चाहिए।
- खड़ी फसल में 250 ग्राम बेविस्टीन, 1.25 किलाग्राम इण्डोफिल एम–45 को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- हिनोसान का छिड़काव भी किया जा सकता है। एक छिड़काव पौधशाला में रोग देखते ही, तथा दो–तीन छिड़काव 10–15 दिनों के अन्तर पर बालियाँ निकलने तक करना चाहिए।
- बीम नामक दवा की 300 मिली ग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया जा सकता है।

10. बकानी

यह एक फफुंद जनित रोग है। रोग ग्रस्त पौधे औरों से लम्बे बढ़कर सुख जाते हैं। इसे झण्डा रोग भी कहते है। रोकथाम के लिए बीज का बाविस्टिन 2.0 ग्राम प्रति किलो ग्राम से उपचार, पौध की जड़ों को भी इसके घोल (2–3 ग्राम/ली.) में डुबोऐं। रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।

किन्नो के बागों की प्रमुख समस्याएं एवं समाधान

मधुबाला ठाकरे, एम. के. वर्मा, एवं तनुश्री साहू
फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि किन्नो एक नींबू वर्गीय फल है। यह सर्दियों के मौसम में उपलब्ध होता है तथा विटामिन सी से भरपूर होने के कारण लोग इसका सेवन करते हैं। इसका खट्टा–मीठा स्वाद एवं रस से परिपूर्णता किन्नो को जन सामान्य का पसंदीदा बनाती है। पैदावार के अनुपात में समस्त नींबू वर्गीय फलों में किन्नो सबसे ज्यादा उत्पादन देता है एवं उत्तर भारत के उपपोषण कटिबंधीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। अच्छी पैदावार लेने के लिए समय–समय पर आवश्यक प्रबंधन जरुरी है किन्नो के बागों में भी किसान भाइयों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। क्योंकि इसका फल दस से ग्यारह माह तक वृक्ष पर रहता है। इसमें फल मार्च माह में बन जाते हैं इसके पश्चात पूरी ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु तथा लगभग आधी शीत ऋतु यह वृक्ष पर ही रहता है। इसलिए किसानों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह हर चरण पर बाग की उचित देखभाल करें एवं पौधों और फलों को स्वस्थ रखें। किन्नो के बागों की समस्याओं की बात करें तो यह निम्नलिखित हैः

1. फलों का झड़ना
2. वृक्षों का ओज (विगर) कम होना
3. बाग का अति सघन होना
4. कीटों का अत्याधिक प्रकोप
5. बीमारियों का प्रकोप
6. नए पौधों की खरीद

1. फलों का झड़नाः किन्नो में फलों का झड़ना एक प्रमुख समस्या है। फलों का झड़ना, फलों के बढ़वार की कई अवस्थाओं में होता है। सबसे पहले फल बनने के बाद ही गिरना प्रारंभ कर देते हैं दूसरी अवस्था ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ होने के समय आती है तथा तीसरी वर्षा ऋतु के समाप्त होने के बाद शुरू होती है। इसका प्रबंधन करने के लिए 2,4–डी (हॉर्टिकल्चर ग्रेड का सोडियम साल्ट) का 10 ग्राम प्रति 500 ली. पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव मार्च, अप्रैल, अगस्त एवं सितंबर माह के अंतिम सप्ताह में करना चाहिए। इसके साथ ही फफूंदनाशी बेविस्टीन (0.1%) का छिड़काव कर सकते हैं। इसके साथ ही बाग में सिंचाई का उचित प्रबंध करना चाहिए।

2. वृक्षों का ओज (विगर) कम होना : किन्नो में फल लंबी अवधि तक वृक्ष पर रहता है। परिणामस्वरुप वृक्ष को लंबे समय तक पोषक तत्व एवं पत्तियों द्वारा बनाए गए भोजन फलों तक पहुंचाना होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि किन्नों के वृक्षों को समयानुसार पोषक तत्व दिए जाएं। इसके साथ ही साथ समय पर कीट एवं बीमारियों का प्रबंधन तथा सिंचाई की उचित व्यवस्था भी करना अति आवश्यक है। किसानों को अपने बाग की मिट्टी वह पतियों की जाँच करवा कर उसके हिसाब से पोषण प्रबंधन करना चाहिए। दिल्ली की स्थिति में स्थित 400:600:240 [नाइट्रोजन(N):फास्फरोस(P_2O_5):पोटैशियम(K)] की मात्रा 4 वर्ष के किन्नों के लिए उपयुक्त है। इसकी आधी मात्रा फल तुड़ाई के उपरांत जनवरी में डालते हैं। शेष आधी मात्रा का एक चौथाई जून तथा शेष एक चौथाई सितंबर में डालते हैं। 4 वर्ष के पौधों में 40 किलोग्राम गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद डालना उपयुक्त रहता है। इसके अलावा यदि वर्मीकम्पोस्ट उपलब्ध हो तो उसका उपयोग भी कर सकते हैं। समय– समय पर सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करके भी पौधों को स्वस्थ रखा जा सकता है तथा फलों की गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है। जिंक सलफेट (0.3%) का अप्रैल–मई या जून या अगस्त सितम्बर में छिड़काव कर सकते हैं। आयरन की कमी को पूरा करने के लिए फेरस सल्फेट (0.25%) का छिड़काव करना चाहिए ।

3. बाग का अति सघन होना : किन्नो की सघन बागवानी में इसकी समस्या ज्यादा आती है। प्रत्येक वर्ष फल तुड़ाई के उपरांत किन्नो में सूखी हुई शाखाएं तथा समय–समय पर वाटर सकर को हटाते हैं अन्यथा बाग

अधिक सघन हो जाता है। इस कार्य को बड़ी कुशलता से करना चाहिए। हर एक पौधों को कॉंट–छॉंट करने से पहले, औजारों को 70% इथेनॉल से पोंछ कर ही उपयोग करना चाहिए ताकि विषाणु रोग ना फैल सके। किन्नो एक सदाबहार वृक्ष है। इसलिए इसमें पर्णपाती वृक्षों जैसे सेब इत्यादि कि तरह कॉंट–छॉंट नहीं कर सकते। इसमें फूल एवं फल पुरानी शाखाओं पर आते हैं इसलिए अमरुद की तरह भी अधिक कॉंट–छॉंट नहीं कर सकते। अन्यथा पौधे के स्वास्थय एवं फल उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है इसमें जमीन के अधिक नजदीक टूटी हुई शाखाएं, दूसरे पेड़ (कतार से कतार या एक ही कतार में) छूती हुई शाखाओं, एक दूसरे को काटती हुई शाखाओं को काटना चाहिए। जिससे कि बाग में भविष्य में होने वाली वानस्पतिक वृद्धि के लिए जगह बन जाए। काटने के बाद कटे हुए सिरे पर बोर्डो पेस्ट लगाना चाहिए । कॉंट–छॉंट के बाद बेविस्टीन (0.2:) का छिड़काव फायदेमंद होता है।

4. कीटों का प्रकोप एवं समाधानः वैसे तो किन्नों में बहुत तरह के कीटों की समस्या देखी गई है पर कुछ प्रमुख कीट है जो बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इन कीटों का प्रबंधन इस प्रकार से करें:

i. सिट्रस सायला कीट : जब भी किन्नो में नई पत्तियां निकलती है तब इसका प्रकोप ज्यादा होता है। यह पौधों के कोमल भागों से रस चूसता हैं। इसके प्रबंधन के लिए स्पीनोसाइड (4 मिली प्रति 10 लीटर पानी में मिलाकर) छिड़काव करें।

ii. सिट्रस लीफ माइनर : इसके प्रकोप से पत्तियों में चांदी के रंग की टेढ़ी–मेंढ़ी लकीरें दिखती हैं। इससे बचाव के लिए क्लोरोपायरीफॉस का (0.75 मिली प्रति लीटर के हिसाब से) छिड़काव करें।

iii. थ्रिप्सः किन्नों में थ्रिप्स की भी समस्या होती है। इसकी रोकथाम के लिये इमिडाक्लोपिड (4 मिलीलीटर प्रति 10 लीटर की दर से) का छिड़काव करना चाहिए।

iv. फल मक्खीः फल मक्खी के प्रकोप से किन्नों में फल गिरने लगते हैं। तथा जो फल लगे होते हैं वे भी खाने के लिए उपयुक्त नहीं होते। फल मक्खी से ग्रसित फलों की बाहरी सतह पर छोटा सा छिद्र दिखाई देता है एवं फलों का गिरना शुरू हो जाता है। इसके लिए किसान भाई फेरोमेंन ट्रैप का इस्तेमाल करें। आस –पास के सभी किसान मिलकर इसका प्रबंधन करें तथा ग्रसित फलों को गड्ढे में दबा दें, ताकि फल मक्खी की संख्या को काम किया जा सके।

इसके अलावा यदि छाल भक्षक इल्ली का प्रकोप होता है तो शाखाओं पर स्थित इसके जालों को साफ करके कोई तार डालकर घुमायें। इसके बाद पेट्रोल या केरोसीन डालकर गीली मिट्टी से छेद बंद कर देना चाहिए। और यदि दीमक की समस्या है तो क्लोरोपायरीफास को सिंचाई के पानी के साथ डालना चाहिए ।

5. बीमारियों का प्रकोप एवं रोकथाम : किन्नो में निम्नलिखित बीमारियाँ प्रमुख हैं :

i. फायटोप्थोरा सड़नः इस बीमारी में पेड़ की जड़ें सड़ने लगती है तथा तने से गोंद जैसा चिपचिपा पदार्थ निकलने लगता है। इससे बचाव के लिए प्रभावित भाग को चाकू से हटाकर बोर्डो पेस्ट या रिडोमिल पेस्ट लगाए, जल निकास का अच्छा प्रबंध हो तथा ड्रिप या रिंग सिंचाई विधि को अपनाकर इसे रोका जा सकता है।

ii. सिट्रस कैंकरः यह दूसरी प्रमुख बीमारी है इसमें पत्तियों तथा फलों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इससे बचाव के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड (50 डब्लू पी का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से) का छिड़काव करें। या बोर्डोमिक्सर (2:2:250) का छिड़काव भी कर सकते हैं।

iii. सिट्रस ट्रिस्टेजाः यह तीसरी प्रमुख बीमारी है। सिट्रस ट्रिस्टेजा यह एक विषाणु से होने वाली बीमारी है के द्वारा फैलती है। इससे बचने के लिए इमिडाक्लोरोपिड 3 मिलीलीटर प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

6. नए पौधों की खरीदः किसानों को सलाह दी जाती है कि नए पौधे हमेंशा सरकार द्वारा स्टार प्रमाणित पौधशालाओं से ही किन्नो के पौधों की खरीद करें ताकि स्वस्थ एवं प्रमाणित पौधों को ही नए बाग में लगा सकें कभी–कभी किसान बिना प्रमाणित नर्सरी से पौधे लेते हैं जिसकी वजह से उन्हें भविष्य में फल न लगने, निम्न गुणवत्ता के फल लगने, बहुत –सी बीमारियों का प्रकोप इत्यादि का सामना करना पड़ता है और हानि उठानी पड़ती है।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर किन्नों की विभिन्न समस्याओं से बचा जा सकता है।

बोर्डो मिश्रण बनाने की विधि (2:2:250)

इसके लिए कॉपर सल्फेट (नीला थोथा) 2 किलोग्राम, बिना बुझा हुआ चूना 2 किलोग्राम, तथा ढाई सौ लीटर पानी की आवश्यकता होती है। कॉपर सल्फेट एवं चूने को अलग–अलग बर्तनों में शाम के समय भिगो दें। कॉपर सल्फेट को भिगोने के लिए हल्का गर्म पानी भी ले सकते हैं। तीसरे बड़े बर्तन में दोनो घोलों को एक साथ धीरे–धीरे डाल कर मिला लें । इससे ढाई सौ लीटर बना कर छान लें। इसके पश्चात इसकी सांद्रता को देखना बहुत आवश्यक है। इसके लिए एक लोहे के चाकू पर इसकी बूंद डालें। यदि तांबे जैसा रंग आता है तो इसमें और चूना मिलाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही घोल बनाने के बाद तुरंत छिड़काव करें। क्योंकि भंडारित करने से इसकी फफूंदनाशक क्षमता नष्ट हो जाती है। बारिश के दिनों में या तेज धूप के समय इसका छिड़काव ना करें। बोर्डो पेस्ट बनाने के लिए कॉपर सल्फेट 1 किलोग्राम बुझा हुआ चूना 1 किलोग्राम तथा पानी 10 लीटर लें। इससे बोर्डो मिश्रण की तरह बनाएं। तथा अंत में एक लीटर क्लोरोपायरीफास (कीटनाशक) मिला कर मुख्य तने पर डेढ से दो फीट तक ब्रश से लगा दें।

वर्षा ऋतु में पशु प्रबंधन

वी० एस० सोलंकी, पशु चिकित्सा अधिकारी
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

साधारणतया भारत में वर्षा ऋतु का समय 15 जून से 15 सितम्बर तक का होता है। इस दौरान वातावरण में अधिक आद्रता होने की वजह से वातावरण के तापमान में अधिक उतार चढाव देखने को मिलता है जिसका कुप्रभाव प्रत्येक श्रेणी के पशुओं पर भी पड़ता हैं। वातावरण में आद्रता की अधिकता होने के कारण पशु की पाचन प्रक्रिया के साथ–साथ उसकी आन्तरिक रोगरोधक शक्ति पर भी असर पड़ता है परिणामस्वरूप पशु अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता हैं। इसी मौसम के दौरान परजीवियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि देखने को भी मिलती है जिनके द्वारा पशुओं को प्रोटोजुन एवम् पेरासिटिक रोग हो जाते हैं। इन रोगों के प्रकोप से पशु का स्वास्थ बिगड़ जाता है जिससे पशुपालकों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए वर्षा ऋतु के दौरान अपनाने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया जा रहा है जिनका पालन करने से पशु–पालक अपने पशुओं को स्वास्थ्य रख सकते हैं।

वर्षा ऋत में होने वाले प्रमुख रोगः

1. गलघोंटू रोग (एच.एस.):

गाय व भैंसों में होने वाला एक बहुत ही घातक तथा छूतदार रोग है जो की अधिकतर बरसात के मौसम में होता है यह गो पशुओं की अपेक्षा भैंसों में अधिक पाया जाता है यह रोग बहुत तेजी से फैलकर बड़ी संख्या में पशुओं को अपनी चपेट में लेकर उनकी मौत का कारण बन जाता हैं जिससे पशु पालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में तेज बुखार, गले में सूजन, सांस लेने में तकलीफ जीभ निकालकर सांस लेना तथा सांस लेते समय तेज आवाज होना आदि शामिल है कईं बार बिना किसी स्पष्ट लक्षणों के ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है

उपचार– पशु–पालकों को रोग–ग्रसित पशु को दूसरे स्वस्थ पशुओं से अलग रख कर पशु चिकित्सक द्वारा उपचार कराएं। इस रोग से ग्रस्त हुए पशु को तुरन्त पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए अन्यथा पशु की मौत हो जाती है। सही समय पर उपचार किए जाने पर रोग ग्रस्त पशु को बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोगनिरोधक टीके लगाए जाते हैं पहला टीका 6 माह की आयु में दूसरा 12 माह की आयु में तथा इसके बाद हर साल यह टीका लगाया जाता हैं।

बचाव एवम् रोकथाम– वर्षा शुरू होने से पहले पशु पालक को नजदीकी पशु चिकित्सालय में जाकर अपने पशुओं को गलघोटू रोग का टीका लगवाये।

2. मुंहपका–सुरपका रोग

सूक्ष्म विषाणु से बहुत तेजी फैलने वाला छुतदार रोग है जो गाय (वायरस), भैंस, भेड़, बकरी, ऊट, सुअर आदि पशुओं में होता है। विदेशी व संकर नस्ल की गायों में यह बीमारी अधिक गम्भीर रुप से पायी जाती है। यह बीमारी हमारे देश में हर स्थान में होती है। इस रोग से ग्रस्त पशु ठीक होकर अत्यन्त कमजोर हो जाते है। दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम हो जाता है तथा बेल काफी समय तक काम करने योग्य नहीं रहते।

रोग का कारणः

मंहुपकाखुरपका रोग एक अत्यन्त सुक्ष्म विषाणु जिसके अनेक प्रकार तथा उपप्रकार है–, से होता है। इनकी प्रमुख किस्मों में ओ.ए.सी., एशिया–1, एशिया–2, एशिया–3, सैट–1, सैट–2, सैट–3 तथा इनकी 14 उपकिस्में शमिल है। हमारे देश में यह रोग मुख्यतः ओ.ए.सी. तथा एशिया–1 प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है। नम वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीक क्षेत में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलने में सहायक कारक हैं।

संक्रमण विधिः

यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने, पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध निकालने वाले व्यक्ति के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है। रोग के विषाणु बिमार पशु की लार, मंहु, खुर व थनों में पड़े फफोलों से बहुत अधिक संख्या में पाए जाते है। ये खुले में घास, चारा तथा फर्श पार चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं लेकिन गर्मी के मौसम में यह बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। विषाणु जीभ, मंहु, आंत, खुरों के बीच की जगह तथा थनों में घाव आदि के द्वारा स्वास्थ पशु के रक्त में पहुंचते हैं तथा लगभग 5 दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्ष्ण पैदा करते हैं।

रोग के लक्षणः

रोग ग्रस्त पशु को 104–106 डिग्रीफारेनाहायट तक बुखार हो जाता है। वह खाना पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है। दूध उत्पादन गिर जाता है। मुंह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चपचप की आवाज आती हैं इसी कारण इसे चपका रोग भी कहते है तेज बुखार के बाद पशु के मुंह के अंदर गालों, जीभ, हॉठ तालू व मसूडों के अंदर, खुरों के बीच तथा कभी–कभी थनो व अयन पर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप ले लेते हैं जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना पीना बन्द कर देते हैं जिससे वह बहुत कमजोर हो जाता है। खुरों में दर्द के कारण पशु लगड़ा चलने लगता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। नवजात बच्छेबच्छियां बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते हैं। लसपरवाही होने पर पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं। हालाकिं व्यस्क पशु में मृत्यु दर कम लगभग (100%) है लेकिन इस रोग से पशु पालक को आर्थिक हानि बहुत ज्यादा उठानी पडती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है। ठीक हुए पशुओं का शरीर खुरदरा तथा उनमें कभी–कभी हांफना रोग हो जाता है। बैलो में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती हैं।

उपचार

इस रोग का कोई निशचित उपचार नहीं है लेकिन बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाता है। रोगी पशु में सेकैन्डी संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक की सलाह पर एंटीबायोटिक के टीके लगाए जाते हैं। मुंह व खुरों के घावों का फिटकरी या पोटाश के पानी में धोते हैं। मुंह में बोरोगिलिसरीन तथा खुरों में किसी एंटीसेप्टिक लोशन या क्रीम का प्रयोग किया जा सकता है।

रोग से बचाव

1. इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को पोलीवेलेंट वेक्सीन के वर्ष में दो बार टीके अवश्य लगवाने चाहिए। बच्छे बच्छियां में पहला टीका 1 माह की आयु में, दूसरा तीसरे माह की आयु तथा तीसरा 6 माह की उम्र में और इसके बाद नियमित टीके लगाए जाने चाहिए।
2. बीमारी हो जाने पर रोग ग्रस्त पशु को स्वास्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।
3. बीमार पशुओं की देख भाल करने वाले व्यक्ति को भी स्वस्थ पशुओं के बाड़े से दूर रहना चाहिए।
4. बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।
5. रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशु नहीं खरीदना चाहिए।
6. पशुशाला को साफ सुथरा रखना चाहिए।
7. इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर जमीन में गाढ़ देना चाहिए।

3. लंगड़ा बुखार/तीन दिवसीय बुखार

नामस्वरूप इसमें पशु तीन दिन तक तेज ज्वर से ग्रसित रहता हैं। उसे खड़े रहने में कमजोरी महसूस होती है जिस कारण वह बैठा रहता हैं। पशु चारा खाना छोड़ देता हैं तथा लंगडा कर चलता हैं।

उपचार– मीठा सोडा तथा सोडियम सैलिसिएट को बराबर मात्र में पिलाने से पशु को आराम मिलता हैं।

4. चेचक रोग (स्माल पॉक्स)

यह रोग पशु आवास में गन्दगी के रहने से होता हैं। इसमें पशु की ल्योटी (आयन) पर लाल रंग के दाने

निकलने के साथ–साथ तेज बुखार भी होता हैं।

उपचार– थनों एवम् आयन को पहले पोटेशियम पमैंगनेट (लालदवा) के घोल से धोएं और उसके पश्चात मलहम लगाने से पशु को आराम मिलता हैं।

5. परजीवियों का प्रकोप

बरसात होते ही परजीवियों की संख्या में स्वतः अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। जिससे पशुओं को शारीरिक व्याधियों का सामना करना पड़ता हैं। यह प्रायः दो प्रकार के होते है –

1. अन्तः जीवी –जैसे पेट के कीड़े, कृमी आदि
2. बाह्य जीवी –चींचड़, मेंज, जूं आदि

लक्षण– रोग ग्रसित पशु में सुस्ती, कमजोरी, अनीमिया (खून की कमी) एवं दूध में कमी देखने को मिलती है। पशु को पाचन प्रक्रिया में शिकायत रहती है जिससे पेट में दर्द और पतला गोबर आता है।

उपचार– पशु चिकत्सक की सलाह से पशुओं को उनके वजन के अनुसार परजीवीनाशक दवा नियमित रूप से दो बार पिलायें।

बचाव– बारिश के मौसम में पशुओं को जोहड़ के किनारे न लेकर जाएँ। इसके साथ–साथ जोहड़ की किनारों वाली घास न खिलाएं, क्योंकि ये घास कीड़ों के लार्वों से ग्रस्त होती है। जो कि पेट में जाकर कीड़े बन जाते हैं और अनेक विकार उत्पन्न करते हैं।

6. खाज–खुजली

इस बीमारी का मुख्य कारण भी पशुशाला में गंदगी का होना ही है। इसमें त्वचा पर अत्यंत खुजलाहट होती है जिसकी वजह से त्वचा मोटी होकर मुरझा जाती है और उस जगह के सारे बाल झड़ जाते हैं। कभी–कभी इन जगह पर जीवाणुओं के आश्रय से बहुत गन्दी दुर्गन्ध भी आती है।

उपचार– रोगी पशु का चिकित्सक द्वारा परीक्षण कराकर उपचार करवाना चाहिए।

उपरोक्त बिमारियों को ध्यान में रखने के साथ–साथ पशुपालकों को पशु प्रबंधन सम्बन्धी बातों पर भी गौर करना चाहिए जो कि निम्नलिखित है।

1. पशुशाला की खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए तथा बिजली के पंखों का प्रयोग करना चाहियें जिससे पशुओं को उमस एवम् गर्मी से राहत मिल सकें।
2. पशुशाला में पशु के मलमूत्र के निकासी का उचित प्रबंध होना चाहियें। पशु–शाला को दिन में एक बार फिनाइल के घोल से अवश्य साफ करना चाहिए जिससे दुर्गन्ध फैलाने वाले बैक्टीरिया का असर कम हो सकें।
3. पशु को खेतों के समीप गड्ढे या जोहड़ का पानी पिलाने से परहेज करें क्योंकि इस दौरान किसान खेतों में खरपतवार एवम् कीटनाशक का इस्तमाल करते है जो कि रिसकर इन में आ जाता है। कोशिश करें की पशु को बाल्टी से साफ एवम् ताजा पानी पिलाएं।
4. पशु को हरा चारा अच्छी तरह झाड़ कर खिलाएं क्योंकि बरसात के समय घोंघों का प्रकोप अधिक होता है एवम् यह चारे के निचले तने एवम् पत्तियों पर चिपके होते हैं। घोंघें मुख्यतः फ्लूक के संरक्षक होते हैं। इसलिए पशुपालकों को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि पशुओं का चारा घोंघों से ग्रसित न हों।
5. सरकारी हस्पताल में जाकर अपने पशुओं का टीकाकरण अवश्य करवाएं जैसे गलघोंटू के टीके , मुँह खुरपका रोग के टीके इत्यादि।
6. 15 दिन के अन्तराल पर परजीविओं की रोकथाम हेतु कीटनाशक दवाइयों को पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार प्रयोग करें।
7. यदि इस मौसम में अन्य कोई विकार पशुधन में उत्पन्न होते हैं तो तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लेकर उपचार करें।

7. दुधारू पशुओं में थनैला रोग

दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से थनैला रोग दुधारू पशुओं का एक महत्वपूर्ण संक्रामक रोग है जिसमें थनों के संक्रमित होने से दूध के उत्पादन में कमी हो जाती है। यह रोग कई प्रकार के रोगाणुओं के दुग्ध नली में प्रवेश करने से हो जाता है जैसे स्ट्रेप्टोकॉकस, स्टेफाईलोकॉकस , इ कोली, माइको बैक्टीरिया इत्यादि। इसके साथ ही गंदे

फर्श, दोहक के गंदे हाथ तथा बर्तन के उपयोग से रोगाणु के थन में प्रवेश करने से भी यह रोग होता है। दूषित दूध के सेवन से गले में खराश, बैचेनी, उल्टी, दस्त आदि हो सकता है इसलिए यह रोग जनस्वास्थ्य एवं आर्थिक दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण है।

लक्षणः–

- थन व अयन का आकार अनियमित होकर दर्द महसूस होता है
- थन की कोमलता खत्म हो जाती है और थन को छूने पर काफी कड़ा महसूस होता है
- प्रभावित पशु दोहते समय बैचेनी तथा थनों में सूजन आ जाती है
- दूध के रंग में परिवर्तन व मात्रा में कमी हो जाती है
- दूध में मवाद, थक्क, पपड़ी, रक्त के छीटें पाए जाते हैं

उपचारः–

- रोग की अवस्था के अनुसार उपचार करना चाहिए जैसे अयन की सफाई जो बर्फ या मेंग्नीशियम सल्फेट को गुनगुने पानी में डालकर की जाती है।
- थन में डालने वाली दवा, जैसे– मेंस्टेलान, फ्लोक्लाक्स, मेंमीटल आदि का उपयोग किया जाता है।
- लक्षणों के आधार पर एन्टीबॉयोटिक, ऐन्टीहिस्टामिनिक तथा विटामिन के इंजेक्शन उचित मात्रा व अवधि में लगाया जा सकता है।

बचाव के उपायः–

- थनों व अयनों को साफ व कीटाणु रहित कपड़े से पोंछना चाहिए।
- दोहक को स्वच्छ कपड़े पहनना चाहिए तथा उपरोक्त घोल से हाथ, थन व बर्तन साफ कर लेना चाहिए।
- दुग्धशाला का वातावरण स्वच्छ एवं कीटाणु रहित होना चाहिए।
- गौशाला का फर्श समतल एवं साफ होना चाहिए। फर्श को प्रतिदिन किसी अच्छे घोल जैसे– डेटाल, लाल दवा, फिनायल के घोल से धोकर साफ करना चाहिए
- यह रोग प्रायः गाय एवं भैसों आदि में जनन के बाद पाया जाता है। अतः गाय की शुष्क अवस्था में समस्त थनों की दुग्ध नलिकाओं कें अंदर ट्यूब दवा की मात्रा को डालकर छोड़ देते हैं।

8. दुग्ध – ज्वर

दुधारू गाय भैंस या बकरी इस रोग के चपेट में पड़ती है। ज्यादा दुधारू पशु को ही यह बीमारी अपना शिकार बनाती है। बच्चा देने के 24 घंटे के अदंर दुग्ध ज्वर के लक्षण साधारणतया दिखते हैं।

लक्षण

1. पशु बेचैन हो जाता है।
2. पशु कांपने और लड़खड़ाने लगता है। मांसपेशियों में कंपन होता है, जिसके कारण पशु खड़ा रहने में असमर्थ रहता है।
3. पलके झुकी– झुकी और आँखे निस्तेज सी दिखाई देती हैं।
4. मुंह सूखा होता है।
5. तापमान सामान्य रहता है या उससे कम हो जाता है।
6. पशु सीने के सहारे जमीन पर बैठता है और गर्दन शरीर को एक ओर मोड़ लेता है।
7. ज्यादातर पीड़ित पशु इसी अवस्था में देखे जाते हैं।
8. तीव्र अवस्था में पशु बेहोश हो जाता है और गिर जाता है। चिकित्सा नहीं करने पर कोई– कोई पशु 24 घंटे के अंदर मर भी जाता है।

चिकित्सा

1. थन को गीले कपड़े से पोंछ कर उसमें साफ कपड़ा इस प्रकार बांध दें कि उसमें मिट्टी न लगे।
2. थन में हवा भरने से लाभ होता है।
3. ठीक होने के बाद 2–3 दिनों तक थन को पूरी तरह खाली नहीं करें।
4. पशु को जल्दी और आसानी से पचने वाली खुराक दें।
5. पशु चिकित्सक का परामर्श लेना नहीं भूलें।

9. दस्त और मरोड़

इस रोग के दो कारण हैं : अचानक ठंडा लग जाना और पेट में कीटाणुओं का होना। इसमें आंत में सूजन हो जाती है।

लक्षण

1. पशु को पतला और पानी जैसा दस्त होता है।
2. पेट में मरोड़ होता है।
3. आंव के साथ खून गिरता है।

चिकित्सा

1. आसानी से पचने वाला आहार जैसे माड़, उबला हुआ दूध, बेल का गुददा आदि खिलाना चाहिए।
2. चारा पानी कम देना चाहिए।
3. बाछा व बाछी को कम दूध पीने देना चाहिए।
4. पशु चिकित्सा की सेवाएँ प्राप्त करनी चाहिए।

9. जेर का अंदर रह जाना

पशु के ब्याने के बाद चार–पांच घंटों के अंदर ही जेर का बाहर निकल जाना बहुत जरूरी है। कभी–कभार जेर अंदर ही रह जाता है जिसका कुपरिणाम मवेशी को भुगतना पड़ता है। खास कर गर्मी में अगर जेर छः घंटा तक नहीं निकले तो इसका नतीजा काफी बुरा हो सकता है। इससे मवेशी के बाँझ हो जाने आंशका भी बनी रहती है। जेर रह जाने के कारण गर्भाशय में सूजन आ जाती है और खून भी विकृत हो जाता है।

लक्षण

1. बीमार गाय या भैंस बेचैन हो जाती है।
2. झिल्ली का एक हिस्सा योनिमुख से बाहर निकल जाता है।
3. बदबूदार पानी निकलने लगता है, जिसका रंग चाकलेटी होता है।
4. दूध भी फट जाता है।

चिकित्सा

1. पिछले भाग को गर्म पानी से धोना चाहिए। ढोते समय इस बात का ख्याल रखें कि जेर में हाथ न लगे।
2. जेर को निकालने के लिए किसी प्रकार का जोर नहीं लागाया जाए।
3. पशु चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए।

11. योनि का प्रदाह

यह रोग गाय– भैंस के ब्याने के कुछ दिन बाद होता है। इससे भी दुधारू मवेशियों को काफी नुकसान पहुँचता है। प्रायः जेर का कुछ हिस्सा अंदर रह जाने के कारण यह रोग होता है।

लक्षण

1. मवेशी का तापमान थोड़ा बढ़ जाता है।
2. योनि मार्ग से दुर्गन्धयुक्त पिप की तरह पदार्थ गिरता रहता है। बैठे रहने की अवस्था में तरल पदार्थ गिरता है।
3. बेचैनी बहुत बढ़ जाती है।
4. दूध घट जाता है या ठीक से शुरू ही नहीं हो पाता है।

चिकित्सा

1. गुनगुने पानी में थोड़ा सा डेटोल या पोटाश मिलाकर रबर की नली की सहायता से देनी गर्भाशय की धुलाई कर देनी चाहिए।
2. पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

नोटः इससे पशु को बचाने के लिए सावधानी बरतनी जरूरी है, अन्यथा पशु के बाँझ होने की आशंका रहेगी।

12. निमोनिया

पानी में लगातार भीगते रहने या सर्दी के मौसम में खुले स्थान में बांधे जाने वाले मवेशी को निमोनिया रोग हो जाता है। अधिक बाल वाले पशुओं को यदि भीगने के बाद ठीक से पोछा न जाए तो उन्हें भी यह रोग हो सकता है।

लक्षण

1. शरीर का तापमान बढ़ जाता है।
2. सांस लेने में कठिनाई होती है।
3. नाक से पानी बहता है।
4. भूख कम हो जाती है।
5. पैदावार घट जाती है।
6. पशु कमजोर हो जाता है।

चिकित्सा

1. बीमार मवेशी को साफ तथा गर्म स्थान पर रखना चाहिए।

2. उबलते पानी में तारपीन का तेल डालकर उससे उठने वाला भाप पशुओं को सुघाने से फायदा होता है।
3. पशु के पांजर में सरसों तेल में कपूर मिलकर मालिश करनी चाहिए।
4. पशु चिकित्सा के परामर्श से इलाज की व्यवस्था करना आवश्यक है।

13. घाव

पशुओं को घाव हो जाना आम बात है। चरने के लिए बाड़ा तपने के सिलसिले में तार, काँटों या झाड़ी से काटकर अथवा किसी दूसरे प्रकार की चोट लग जाने से मवेशी को घाव हो जाता है। हल का फाल लग जाने से भी बैल को घाव हो जाता है और किसानों की खेती बाड़ी चौपट हो जाती है। बैल के कंधों पर पालों की रगड से भी सूजन और घाव हो जाता है। ऐसे सामान्य घाव और सूजन को निम्नांकित तरीके से इलाज करना चाहिए।

चिकित्सा

1. सहने लायक गर्म पानी में लाल पोटाश या फिनाइल मिलाकर घाव की धुलाई करनी चाहिए।
2. अगर घाव में कीड़े हो तो तारपीन के तेल में भिगोई हुई पट्टी बांध देनी चाहिए।
3. मुंह के घाव को, फिटकरी के पानी से धोकर छोआ और बोरिक एसिड का घोल लगाने से फायदा होता है।
4. शरीर के घाव पर नारियल के तेल में (भाग तारपीन का तेल और थोड़ा सा कपूर मिलाकर लगाना चाहिए।

14. अफारा

कारणः

सडा गला चारा दाना खाने या चारा दाने के एकदम बदलाव अथवा ज्यादा हरा चारा या दाना खाने के कारण पशु के पेट में गैस बन जाती है। इस रोग कभी कभी पशु की मौत भी हो जाती है

लक्षण

पशु का पेट फूल जाता है। बायी कोख फूली दिखाई देती है। इसको बजाने पर ड्रम की तरह आवाज निकलती है। पशु बेचैन व पेट दर्द की शिकायत होती है। सास लेने में दिक्कत होती है। गम्भीर अवस्था में पशु की सांस न लेने के कारण मृत्यु हो सकती है।

उपचार

पशु का पेट फूलने की अवस्था में पशु को काला नमक 100 ग्राम, हींग 10 ग्राम मिलाकर दें। तारपीन का तेल 50 मि.ली., 0.5 किलो अलसी या सरसों का तेल में मिलाकर देने से भी आराम मिलता है।

बचाव

पशु को सडा, गला व बासी चारा न खिलायें, चरे चारे के साथ सूखा भूसा मिलाकर दें। भीगा चारा कभी न खिलायें व कभी भी चारा, दाना अधिक न खिलायें।

बछड़ों का रोग

निम्नांकित रोग खास कर कम उम्र के बछड़ों को परेशान करते हैं।

1. नाभि रोग

लक्षण

1. नाभि के आस–पास सूजन हो जाती है, जिसको छूने पर रोगी बछड़े को दर्द होता है।
2. बाद में सूजा हुआ स्थान मुलायम हो जाता है तथा उस स्थान को दबाने से खून मिला हुआ पीव निकलता है।
3. बछड़ा सुस्त हो जाता है।
4. हल्का बुखार रहता है।

चिकित्सा

1. सूजे हुए भाग को दिन में दो बार गर्म पानी से सेंकना चाहिए।
2. घाव का मुहं खुल जाने पर उसे अच्छी तरह साफ कर उसमें एंटीबायोटिक पाउडर भर देना चाहिए। इस उपचार को जब तक घाव भर न जाए तब तक चालू रखना चाहिए।
3. पशु चिकित्सा की सलाह लेनी चाहिए।

2. कब्जियत

बछड़ों के पैदा होने के बाद अगर मल नहीं निकले तो कब्जियत हो सकती है।

चिकित्सा

1. 50 ग्राम पाराफिन लिक्विड (तरल) 200 ग्राम गर्म दूध में मिलाकर देना चाहिए।
2. साबुन के घोल का एनिमा देना भी लाभदायक है।

3. सफेद दस्त

यह रोग बछड़ों को जन्म से तीन सप्ताह के अंदर तक हो सकता है। यह छोटे– छोटे कीटाणु के कारण होता है। गंदे स्थान में रहने वाले बछड़े या कमजोर बछड़े इस रोग का शिकार बनते हैं।

लक्षण

1. बछड़ों का पिछला भाग दस्त से लथ – पथ रहता है।
2. बछड़ा सुस्त हो जाता है।
3. खाना–पीना छोड़ देता है।
4. शरीर का तापमान कम हो जाता है।
5. आंखे अंदर की ओर धंस जाती है।

चिकित्सा

1. निकट के पशु चिकित्सा के परामर्श से इलाज करानी चाहिए।

4. कौक्सिड़ोसिस

यह रोग कौक्सिड़ोसिस नामक एक विशेष प्रकार की कीटाणु को शरीर के भीतर प्रवेश कर जाने के कारण होता है।

लक्षण

1. रोग की साधारण अवस्था में दस्त के साथ थोड़ा– थोड़ा खून आता है।
2. रोग की तीव्र अवस्था में बछड़ा खाना पीना छोड़ देता है।
3. कुथन के साथ पैखाना होता है जिसमें खून का कतरा आता है।
4. बछड़ा कमजोर होकर किसी दूसरी बीमारी का शिकार भी बन सकता है।

चिकित्सा

1. जितना जल्द हो सके पशु चिकित्सक को बुलाकर इलाज शुरू कर देना चाहिए।

5. रतौंधी

यह रोग साधारणतः बछड़ों को ही होता है। संध्या होने के बाद से सूरज निकलने के पहले तक रोग ग्रस्त बछड़ा करीब – करीब अन्धा बना रहता है। फलतः उसने अपना चारा खा सकने में भी कठिनाई होती है। दूसरे बछड़ों या पशु से टकराव भी हो जाता है।

चिकित्सा

1. इन्हें कुछ दिन तक 20 से 30 बूंद तक कोड लिवर ऑइल दूध के साथ खिलाया जा सकता है।
2. पशु चिकित्सक से परामर्श लिया जाना जरूरी है।

लूः लगना

हीटस्ट्रोक (हाइपरथर्मिया) शरीर का तापमान बढना है और एक घातक स्थिति है, जिसे तत्काल उपचार की आवश्यकता होती है। कुत्तों को गर्म कारों में छोड़ दिया जाता है, पालतू जानवर अत्यधिक गर्मी मैं बाहर निकलते हैं, पर्याप्त छाया की कमी या गर्म मौसम ये सभी कारक ऊष्माघात को बढ़ाते हैं। कुत्तों में हीटस्ट्रोक सबसे आम है, विशेष रूप से "ब्रेचिसेफेलिक" नस्लों (शॉर्ट म्यूज जैसे ब्रिटिश बुलडॉग, पग्स आदि)।

लक्षण

शुरू में आपका पालतू जानवर व्यथित दिखाई देगाय वे ज्यादा बेचेन हो जाते हैं जैसे–जैसे हालात खराब होने लगती हैं और शरीर का तापमान बढ़ने लगता है, वे प्रचुर मात्रा में लार का स्त्राव करने लगते हैं और उनके पैर अस्थिर हो जाते हैं। आप देख सकते हैं कि आपके पालतू जानवरों के मसूड़ों का एक नीला–बैंगनी या चमकदार लाल रंग हो जाता है। यह ऊतकों को अपर्याप्त ऑक्सीजन की आपूर्ति के कारण होता है।

प्राथमिक चिकित्सा

ठंडा पानी डालकर तुरंत अपने पालतू जानवर को कूल करें, जहां यह नल से चलने वाले पानी का उपयोग करना संभव नहीं है। गीला करने के बाद शरीर पर हवा का प्रवाह

बनाए रखने के लिए एयर कंडीशनिंग का उपयोग करना सबसे अच्छा है पंखा या एयर कंडीशनिंग अपने पालतू जानवरों को एक ठंडा प्रभाव बनाए रखने के लिए किये जा रहे हैं। यह प्रारंभिक घरेलु उपचार पालतू जानवरों की जीवित रहने की संभावना को बढ़ाता है।

आपके पालतू जानवर के लिए तत्काल पशु चिकित्सा का ध्यान रखें जैसे कि गहन देखभाल आमतौर पर आपके पालतू जानवर के जीवन को बचाने के लिए आवश्यक है यह केवल मामूली मामलों में है कि प्रारंभिक घर का तापमान ठंडा रखना पर्याप्त इलाज है।

पशु चिकित्सा उपचार

पशु चिकित्सा अस्पताल पहुंचने पर आपके पशुचिकित्सक आपके पालतू जानवर का मूल्यांकन करेगा और आवश्यक उपचार का निर्धारण करेगा। अधिक गंभीर मामले, अधिक गहन देखभाल की आवश्यकता होगी।

गर्मी स्ट्रोक के मामलों में अंतःस्राव द्रव की आवश्यकता होती हैः इंट्रावेनस तरल पदार्थ शरीर को शांत करते हैं, रक्तचाप बनाए रखते हैं, गुर्दा प्रणाली का समर्थन करते हैं आपके पालतू जानवरों के वायुमार्ग को बनाए रखने की आवश्यकता होगी और हर समय मुंह से अधिक लार स्त्राव होता रहेगा। ऑक्सीजन की आवश्यकता हो सकती है कभी–कभी सुरक्षित, प्रभावी वेंटिलेशन की अनुमति देने के लिए बेहोश करने की क्रिया की आवश्यकता होती है।

आपका पशु चिकित्सक आपके पालतू जानवरों की निगरानी करेगा। यह आम तौर पर शरीर का तापमान, रक्त परीक्षण और मूत्र परीक्षा में परिवर्तन की क्षति और उनकी प्रगति की मात्रा का आकलन करने के लिए शामिल है।

उष्माघात रोकना

ऊष्माघात को रोकने में मदद करने के लिए कुछ कदम उठाए जा सकते हैं। इसमें शामिल हैः

- सुनिश्चित करें कि आपके पालतू जानवर के पास हर समय ताजा, साफ पानी हो यदि बाहर हैं, तो एक छायादार क्षेत्र में पानी डालें इसे ठंडा रखने के लिए जमें हुए पानी की बोतलों का उपयोग करने पर विचार करें – या विभिन्न क्षेत्रों में कई पानी के कटोरे प्रदान करें।
- कुछ पालतू जानवर पानी के व्यंजन पर टिप करना पसंद करते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि वे बड़ी हैं और भारी सामग्री से बने हैं।
- अपने पालतू जानवर को बन्द कार में छोड़ देंने से, कारें बहुत तेज गर्म हो जाती हैं और ऊष्माघात का सबसे आम कारण है। यहां तक कि अगर आप खिड़कियों को खोलते हैं तो यह अतिरंजित प्रक्रिया को धीमा करता है पेट की घबराहट नहीं होती है बल्कि वे गर्मी से पैंटिंग करते हैं। पैंटिंग के लिए आपके पालतू जानवर से गर्मी को दूर करने के लिए बड़ी मात्रा में हवा की आवश्यकता होती है।

मृदा क्षरण के कारण एवं रोकथाम के उपाय

राहुल मिश्र, विनोद कुमार शर्मा एवं कपिल आत्माराम चोभे
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

किसानों के लिये मृदा का बहुत अधिक महत्व होता है, क्योंकि किसान इसी मृदा से प्रत्येक वर्ष गुणवत्ता युक्त फसल पैदावार पर आश्रित होते हैं। जल या वायु के प्रवाह द्वारा मृदा के पृथक्करण तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानान्तरण से लगभग 120.72 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल मृदा क्षरण से प्रभावित है। मृदा–क्षरण अथवा भूमि–कटाव मृदा की एक गंभीर समस्या है। जिस के कारण मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ सतह का ह्रास होने लगता है। मृदा कणों का किसी भी कारणों से जैसे तेज हवा, वर्षा या भूस्खलन द्वारा मिट्टी का स्थानान्तरण होना ही मृदा क्षरण कहलाता है ।

मृदा क्षरण की प्रक्रिया

जब वर्षा जल की बूंदें मृदा सतह पर अत्यधिक ऊंचाई से गिरती हैं तो वे महीन मृदा कणों को मृदा पिंड से अलग कर देती हैं। ये अलग हुए मृदा कण जल प्रवाह के साथ झरनों, नालों या नदियों तक चले जाते हैं। क्षरण प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल होते हैंः

– मृदा कणों का अलग होना

– मृदा कणों का विभिन्न साधनों द्वारा स्थानान्तरण

– मृदा कणों का जमाव

मृदा क्षरण के कारण

मृदा क्षरण के कारणों को जाने बिना मृदा क्षरण से प्रभावित मृदा का बचाव मुश्किल है। मृदा अपरदन के कारणों को जैविक व अजैविक कारणों में बांटा जा सकता है। अजैविक कारणों में जल व वायु मुख्य घटक है जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक कारणों में माना गया है जो मृदा क्षरण को नियंत्रित करता है।

मृदा क्षरण के मुख्य कारण निम्नलिखित हैः

– वानस्पतिक क्षेत्रों का घटना

– आग द्वारा वनों को हानि

– भूमि को खाली व बंजर छोड़ना

– वृक्षों का अत्यधिक कटाव

– सही फसल चक्र न अपनाना

– ढलान की दिशा में कृषि कार्य करना।

– सिंचाई की त्रुटिपूर्ण विधियाँ अपनाना

मृदा क्षरण के प्रकार

मृदा क्षरण को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है।

1. प्राकृतिक क्षरणः प्राकृतिक क्षरण मृदा अपरदन को इसकी प्राकृतिक अवस्था में अभिव्यक्त करता है। प्राकृतिक स्थिर परिस्थितियों में किसी स्थान की जलवायु एवं वानस्पतिक परत, जो कि मृदा क्षरण या प्राकृतिक क्षरण वनस्पतिक परत में क्षरण को दर्शाता है। इस प्रकार होने वाला मृदा ह्रास, मृदा निर्माण से कम या बराबर होता है।

2. त्वरित क्षरणः जब मृदा निर्माण व मृदा ह्रास के बीच प्राकृतिक संतुलन, मानवीय गतिविधियों जैसे कि वनों की कटाई में अधिकता या वन भूमि को कृषि भूमि में रूपांतरित करके प्रभावित किया जाता है जिससे अपरदन तीव्रता कई गुणा बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक साधनों से सतही मृदा ह्रास दर, मृदा निर्माण दर से अधिक होती है। इस अपरदन से कृषि योग्य भूमि का उपजाऊपन लगातार कम होता जाता है।

जल क्षरण के प्रकार

जल प्रवाह के द्वारा मृदा का ह्रास जल क्षरण कहलाता है। उच्च व मध्यम ढ़लान वाली भूमि में मृदा ह्रास का मुख्य कारण जल क्षरण होता है। जल क्षरण के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैः

1. वर्षा जल क्षरणः गिरती हुई वर्षा जल की बूंदों के प्रभाव से होने वाले मृदा कणों के पृथक्करण एवं स्थानान्तरण को वर्षा जल अपरदन कहते हैं जिसे बौछार क्षरण के नाम से भी जाना है। मृदा की एक बड़ी मात्रा बौछार की इस सरल प्रक्रिया द्वारा नष्ट हो जाती हैं एवं इसे क्षरण प्रक्रिया में प्रथम चरण के रूप में जाना जाता है।

2. सतह क्षरणः मृदा की लगभग एक समान पतली भूमि से जल बहाव के द्वारा कटाव को सतह क्षरण कहा जाता है। इस प्रकार का क्षरण अत्यधिक हानिकारक होता है क्योंकि इस में क्षरण की गति होने के कारण किसान को इसकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है।

3. रिल क्षरणः यह सतह अपरदन का एक उन्नत रूप है जो कि बहते हुए जल के कारण होता है। जल प्रवाह से होने वाले मृदा कटाव से बनने वाली कम गहरी नालियों (उथली) को रिल अपरदन कहते हैं।

4. नाली क्षरणः अत्यधिक जल प्रवाह से होने वाले मृदा कटाव से गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है जिसे नाली क्षरण के रूप में जानते हैं। नालियों के आकार (न्याट आकार), गहराई (कम, मध्यम या अधिक) के आधार पर इसका वर्गीकरण किया जाता है।

5. भूस्खलन क्षरणः भूस्खलन या मृदापिंड क्षरण पहाड़ी सतह या पर्वतीय ढाल के नीचे गीली ढालदार भूमि पर होता है। इसके मुख्य कारण जैसे ढालों पर कटाई या खुदाई, कमजोर भूगर्भ या ढालों पर वानस्पतिक फैलाव की कमी से क्षरण में वृद्धि हो जाती है।

6. दर्रा निर्माणः खड़ी सतहों के साथ गहरी व संकरी नालियाँ सामान्यतः दर्रा कहलाती हैं। दर्रा गम्भीर क्षरण संकट को दर्शाता है जो कि भूमि के लगातार अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण रिल के फैलने से उत्पन्न होता है।

जल क्षरण को प्रभावित करने वाले कारक

इसके निम्नलिखित कारण होते हैं

– जलवायु
– वनस्पति
– स्थलाकृति
– जैविक गतिविधियां

मृदा संरक्षण के उपाय

मृदा एवं जल संरक्षण के लिये किये गए उपायों को मुख्यतया दो भागों में बांटा जा सकता है (क) जैविक उपाय (ख) अभियान्त्रिकी उपाय।

(क) जैविक उपायः

फसलों या वनस्पतियों में सस्य क्रियाओं द्वारा भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिये उपयोग में लाई गई विधियाँ जैविक उपायों के नाम से जाने जाते हैं।

भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिये निम्नलिखित जैविक उपायों का प्रयोग किया जाता हैः

1. पट्टीदार खेती
2. भू–परिष्करण प्रक्रियाएं
3. वायु अवरोधक व आश्रय आवरण

पट्टीदार खेती : यह पद्धति भूमि की उर्वरता बढ़ाने तथा अप्रवाह एवं भूक्षरण रोकने हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इसके अंतर्गत खेत में पट्टियाँ पर भूक्षरण अवरोधक फसल लगाई जाती हैं।

भू–परिष्करण प्रक्रियाएं : सामान्यतः सख्त मृदा सतह के कारण मिट्टी में जल प्रवेश कम जो जाता है जिससे जल प्रवाह को प्रोत्साहित मिलता है। अतः हल द्वारा उचित प्रकार से की गई जुताई मिट्टी को ढीली एवं पोली करके जल प्रवेश को बढ़ाती है।

वायु अवरोधक व आश्रय आवरण : यह वानस्पतिक उपायों के अंतर्गत आते हैं तथा मुख्यतया वायु क्षरण को कम करने में सहायक होते हैं। ये वानस्पतिक उपाय मृदा सतह के पास वायु की गति को धीमा करके वायु अपरदन कम करते हैं।

ख) अभियांत्रिकी उपाय

मृदा सतह पर जल संरक्षण करने योग्य अभियान्त्रिकी संरचनाओं का निर्माण मृदा अपरदन को रोकने का एक प्रभावी विकल्प है । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संरचनाएं सम्मिलित हैः

1. समोच्च बंध
2. श्रेणीबद्ध बंध
3. वृहत आधार वाली वेदिकाएं
4. सीढ़ीनुमा वेदिकाएं

समोच्च बंधः शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ अधिक रिसाव एवं जल प्रवेश की सम्भावना होती है वहाँ इस पद्धति का प्रयोग अत्यंत प्रभावी हो जाता है। इन क्षेत्रों में 6% ढाल होने तक समोच्च बंध प्रणाली को अपनाया जा सकता है।

श्रेणीबद्ध बंधः इस पद्धति के प्रयोग ऐसे क्षेत्रों जहाँ मिट्टी की जल रिसाव एवं जल प्रवेश क्षमता कम हो, वहाँ किया जाता है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में अप्रवाह जल की अधिक मात्रा होने से उसका सुरक्षित निकास आवश्यक हो जाता है।

वृहत आधार वाली वेदिकाएंः अपेक्षाकृत कम ढाल वाले खेतों में नमी के संरक्षण के उद्देश्य से इन वृहत आधार वाली वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है जो नमी संरक्षण के उद्देश्य के लिये बनाई जाती है।

सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः पर्वतीय क्षेत्रों में यह अधिक ढाल वाले खेतों में सामान्यतया सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाकर फसलें उगाई जाती है। ये मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है।

क) बाह्यमुखी सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः ये वेदिकाएं मुख्यतया कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ की मृदा अधिक पारगम्य हो वहाँ बनाई जाती हैं।

ख) समतल सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ भूमि समतल तथा मृदा अधिक पारगम्य हो इसे क्षेत्रों में इन वेदिकाओं का निर्माण किया जाता हैं।

ग) अन्तर्मुखी सीढ़ीनुमा वेदिकाएंः मुख्यतया अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इन वेदिकाओं की उपयोगिता अधिक होती है जहाँ अधिकांशतः वर्षा जल का खेत से सुरक्षित निकास आवश्यक होता है।

मृदा एवं जल संरक्षण के लिए उपयुक्त एवं प्रभावी उपायों जैसे जैविक तथा अभियांत्रिकी का संयुक्त प्रयोग अत्यधिक लाभदायक होता है। अतः इन दोनों का एक साथ (एकीकृत) प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,